SAMPLE CONTENT ~ NOT FOR SALE

हिन्दी अध्ययन बाइबल

HINDI STUDY BIBLE

Features of the HSB

Introduction

उत्पत्ति का परिचय 12

पंच-ग्रन्थ में उत्पत्ति की पुस्तक का स्थान

बाइबल की प्रथम पाँच पुस्तकों को यहूदियों द्वारा "व्यवस्था" और मसीहियों द्वारा "पंच-ग्रन्थ" या "मूसा की पाँच पुस्तकें" कहा जाता है। पंच-ग्रन्थ का व्यापक मुख्य विषय मूसा के माध्यम से इस्राएलियों के साथ परमेश्वर की वाचा है जिसने इस्राएल को समस्त जगत के लिए परमेश्वर के अधीनस्थ राष्ट्र (ईश्वर-सत्ता) के रूप में स्थापित किया (जिस राष्ट्र में सामाजिक, धार्मिक और नागरिक क्षेत्रों का प्रशासन परमेश्वर के निर्देशों के अनुसार किया जाता है)। लेखक के विषय में पहले जो चर्चा की जा चुकी है, उसके आधार पर यह विचार करना तर्कसंगत है कि "पंच-ग्रन्थ" के प्रथम श्रोतागण इस्राएली थे जो जंगल से होते हुए यात्रा कर रहे थे (या तो मिस्र से निकली वह पीढ़ी या उनकी सन्तानें)। बाइबल के प्रथम भाग के प्रथम खण्ड के रूप में उत्पत्ति की पुस्तक पाठकों को शेष पंच-ग्रन्थ की ओर ले जाती है, और इस प्रकार शेष बाइबल की ओर ध्यान आकर्षित करती है। यह परमेश्वर के स्वभाव और चरित्र तथा परमेश्वर की सृष्टि में मनुष्य का स्थान आदि बातों को कहानी के रूप में समझाती है। यह पुस्तक पाप और उसके परिणामों का विश्लेषण करती है, और उसके प्रति परमेश्वर की प्रतिक्रिया का वर्णन करती है (और इस प्रकार दिखाती है कि क्यों एक सच्चा धर्म छुटकारा देने वाला धर्म होना चाहिए)। इसमें अब्राहम की बुलाहट का वर्णन है जिसके द्वारा विश्व के सभी देश आशीष पाएँगे, साथ ही इसमें इस्राएल राष्ट्र के पूर्वजों के जन्म और उनके कार्यकाल तथा इस्राएल के मिस्र पहुँचने का उल्लेख है। यह तथ्य कि यहोवा समस्त विश्व का सृष्टिकर्ता है, दिखाता है कि क्यों इस्राएल के पास समस्त मानवजाति के लिए एक सन्देश है। उसके साथ-साथ, उत्पत्ति की पुस्तक अपने आरम्भिक अध्यायों में एवं पूर्वजों के विश्वासयोग्य आज्ञापालन के उदाहरणों के द्वारा आचरण के मानकों को स्थापित करती है।

इस कारण, उत्पत्ति की पुस्तक एक निर्देशों की पुस्तक है और यही कारण है कि यहूदियों ने इसे व्यवस्था की पुस्तकों में शामिल किया है, क्योंकि इब्रानी शब्द *तोरह* में, जिसका अनुवाद अकसर "व्यवस्था" किया जाता है, व्यापक रूप में "निर्देश" का संज्ञान निहित है। इसे उचित रूप में "मूसा की प्रथम पुस्तक" माना जा सकता है क्योंकि यह बाद में आने वाली चार पुस्तकों—निर्गमन से व्यवस्थाविवरण—के लिए प्रस्तावना की भूमिका अदा करती है, जो कि मूसा के जीवन के इर्द-गिर्द संरचित है। जैसा कि पंच-ग्रन्थ के परिचय में समझाया गया है (पृ.35-37) बाइबल की ये प्रथम पाँच पुस्तकें शेष बाइबल के लिए बुनियादी हैं, और उत्पत्ति की पुस्तक पंच-ग्रन्थ की बुनियाद है।

उत्पत्ति की पुस्तक का क्रम

उत्पत्ति की पुस्तक के दो प्रमुख भाग हैं: (1) अब्राहम से पूर्व आदिकालीन जगत का इतिहास (अध्या. 1-11); (2) पूर्वजों का की पुस्तक की रीढ़ की हड्डी है, जो इसकी अलग-अलग कड़ियों को एक सम्पूर्ण अखण्ड स्वरूप देती है, और उन विभिन्न शाब्दिक लक्षणों

Maps

Studynotes

अधिकार और ईश्वरीय प्रेरणा का चुनौता नहीं देता। वास्तव में बाइबल से बाहर की ये कहानियाँ, बाइबल में दिए गए वृतान्तों से सर्वथा विपरीत हैं, और इस कारण यह पाठकगण को बाइबल में दिए गए सृष्टि और जल-प्रलय के वृतान्तों के अद्वितीय गुण और चरित्र की सराहना करने हेतु सहायता करती हैं। अन्य प्राचीन साहित्य की परम्पराओं में सृष्टि का निर्माण एक बड़ा संघर्ष है जिसमें अकसर बहुत से देवी-देवतागण आपस में संघर्षरत हैं। जल-प्रलय इसलिए भेजा गया था क्योंकि देवतागण मनुष्यों द्वारा उत्पन्न शोर-शराबे को सह नहीं सके, फिर भी वे उस पर नियंत्रण नहीं पा सके। इन कहानियों के द्वारा प्राचीन जगत के लोग उन देवी-देवताओं के विषय में, जिनकी वे पूजा करते थे, अपनी परम्पराएँ और जीवन जीने का तरीका सीखते थे जिनका उन्हें पालन करना होता था। सृष्टि और जल-प्रलय की बेबीलोन की कहानियों की संरचना यह दर्शाने के लिए थी कि बेबीलोन ही धार्मिक-विश्व का केन्द्र था और उसकी सभ्यता मनुष्यों द्वारा अर्जित सर्वोच्च सभ्यता थी।

उत्पत्ति के पढ़ने पर पाठक यह समझ सकता है कि इसकी संरचना ऐसे भ्रामक विचारों का खण्डन करने के लिए की गई है। केवल एक ही परमेश्वर है जिसका वचन सर्वशक्तिमान है। उसे मात्र शब्द बोलने की आवश्यकता है और जगत अस्तित्व में आता है। सूर्य और चंद्र अपने-अपने अधिकार में ईश्वर नहीं हैं, बल्कि एकमात्र परमेश्वर द्वारा सृजे गए हैं। यह परमेश्वर मनुष्यों के चढ़ावे पर निर्भर नहीं है जैसा बाबेल के लोग मानते थे कि देवता उनकी बलियों पर निर्भर थे, बल्कि बाइबल का परमेश्वर मनुष्यों के लिए भोजन का प्रयोजन करता है। यह ईश्वरीय

उनके प्रकाश में देखें।

1:1-2:3 *परमेश्वर के द्वारा आकाश एवं पृथ्वी की उत्पत्ति तथा उनका व्यवस्था-क्रम करना।* उत्पत्ति की पुस्तक एक प्रतापी वर्णन के साथ आरम्भ होती है कि कैसे परमेश्वर ने सबसे पहले आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की और फिर कैसे उसने पृथ्वी का व्यवस्था-क्रम किया ताकि वह उसके निवास का स्थान बन सके। सात भागों में संरचित, जिनमें से प्रत्येक की पहचान नियत वाक्यांशों के उपयोग से होती है, यह समस्त कड़ी एक सर्वसामर्थी और ज्ञान से परे परमेश्वर की तस्वीर दिखाती है जो सभी वस्तुओं को उनके निर्धारित स्थान में सिद्ध कौशल के साथ रखता है जो उसके द्वारा रचित भव्य संरचना के अनुकूल हैं। बल मुख्यतः इस बात पर है कि परमेश्वर कैसे सब बातों का क्रम या उनकी संरचना करता है। इस विवरण की संरचना इस प्रकार है: पृष्ठभूमि तैयार करने के बाद (1:1-2) लेखक कार्य के छः दिनों (1:3-31) और सातवाँ दिन, अर्थात परमेश्वर के विश्राम दिन का वर्णन करता है (2:1-3)। कार्य के सभी छः दिनों में तरीका एक समान ही है: इसका आरम्भ "फिर परमेश्वर ने कहा" से होता है और अन्त "तब संध्या हुई फिर सवेरा हुआ और दिन हो गया" से होता है। परमेश्वर सब वस्तुओं का सृष्टिकर्ता है यह उद्घोषणा करने के पश्चात (1:1) यह बताने के बजाए कि आरम्भ में पृथ्वी की सृष्टि कैसे की गई (1:1), शेष उत्पत्ति 1 का केन्द्र-बिन्दु (1:3 से आरम्भ होकर) मुख्य रूप से इस बात पर है कि परमेश्वर अपने वचन के द्वारा वस्तुओं को अस्तित्व में लाता है और सृजी गई वस्तुओं को क्रमबद्ध करता है ("जल एक स्थान में इकट्ठा हो जाए," 1:9)। विभिन्न लक्षण इसी बात को दर्शाते हैं। उदाहरण नस्पति का उल्लेख है, जो कि स्पष्ट रूप से चौथे दिन पहले है। जिन पाठकों को चिन्ता है कि इस वृतान्त के दृष्टिकोण में कैसे समझे उन्हें परिचयः उत्पत्ति को पढ़ना चाहिये। प्राचीन निकट-पूर्व के सन्दर्भ

Charts

वंशावलियां: पिता बनने की आयु और मृत्यु के समय आयु

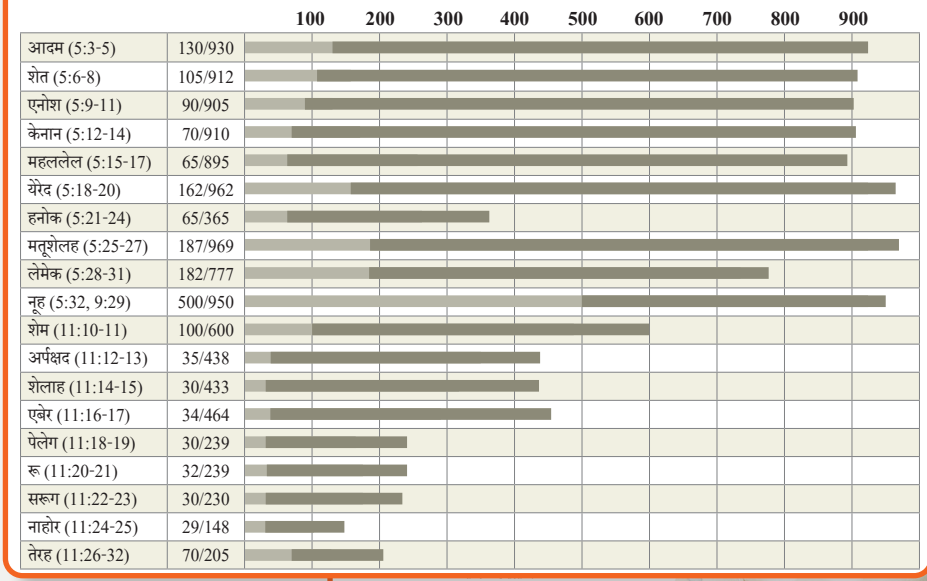

Illustrations

हिन्दी अध्ययन बाइबल

HINDI STUDY BIBLE

उत्पत्ति
का परिचय

लेखक, शीर्षक और लेखनकाल

हिन्दी शीर्षक "उत्पत्ति" मूसा की पांच पुस्तकों के यूनानी अनुवाद *पेण्टाट्यूक* (पंच-ग्रन्थ) से आता है, जिसका अर्थ "आरम्भ" या "उद्गम" है, यह एक बिलकुल उचित शीर्षक है क्योंकि उत्पत्ति की पुस्तक सभी बातों के आरम्भ—जगत, मानवजाति, पाप और यहूदी लोग—के विषय में है। इब्रानी शीर्षक का अनुवाद "आदि में" किया गया है, जो कि इस पुस्तक का प्रथम वाक्यांश है।

परम्परा के अनुसार, पंच-ग्रन्थ की अन्य पुस्तकों के समान, मूसा को ही उत्पत्ति की पुस्तक का लेखक माना जाता है। पंच-ग्रन्थ की अन्य पुस्तकें मूसा के जीवन और इस्राएलियों को कनान की सीमा तक पहुँचाने में उसकी भूमिका से सम्बन्धित है, और स्पष्ट रूप से माना जाता है कि इन पुस्तकों का अधिकांश भाग मूसा द्वारा लिखा गया है (उदा. गिन. 33:2; व्यव. 31:24)। स्पष्ट रूप में, उत्पत्ति आगे आने वाली पुस्तकों का परिचय है, इस कारण यह सोचना स्वाभाविक है कि यदि मूसा ने उनका संकलन किया था तो अवश्य है कि उसी ने उत्पत्ति की पुस्तक लिखी हो (तुल. यूह. 5:46)। पंच-ग्रन्थ के मूल के विषय में मसीहत के आरम्भ से पहले से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक यहूदी और मसीही लोगों की यही मान्यता थी।

परन्तु जैसा कि पंच-ग्रन्थ पर दिए परिचय में बताया गया है (पृ.35-37), 19वीं और 20वीं शताब्दी में अधिकांश आलोचनात्मक विद्वानों ने इस परम्परागत मत का इनकार कर दिया, उनका मानना था कि उत्पत्ति तथा पंच-ग्रन्थ की अन्य पुस्तकें लम्बे समय के अन्तराल में लिखी गईं और पाँचवीं शताब्दी ई.पू. में अपने अन्तिम स्वरूप में आईं। किन्तु, हाल ही के कुछ दशकों में इन विचारों के विषय में विद्वानों का सन्देह लगातार बढ़ता गया है। यह पहचान लिया गया है कि विभिन्न संसाधनों की सहायता लेकर पंच-ग्रन्थ के 'विलम्बित संकलन' का तर्क अति निर्बल और ठोस प्रमाणों से रहित है। यह इस बात से इनकार नहीं है कि उत्पत्ति की पुस्तक में मूसा के बाद के समय के तत्व भी हैं, जैसे कि "दान" और "कसदियों का ऊर" जैसे स्थानों के नाम (उत्प. 14:14; 15:7) या उत्पत्ति में इब्रानी भाषा का कुछ कुछ आधुनिकीकरण, परन्तु एक पवित्र ग्रन्थ में जिसे अगली पीढ़ियों के निर्देश के लिए संरक्षित किया जाता है, ऐसे संशोधन अपेक्षित हैं। यदि भावी पीढ़ियों को यह पाठ समझना है तो स्थानों के नामों का और प्राचीन भाषा का संशोधन किया जाना आवश्यक था।

'पुराना नियम' के सम्पूर्ण कालखण्ड के दौरान उत्पत्ति की पुस्तक के वृतान्त विश्वास के बड़े प्रोत्साहन का कारण रहे हैं। पाठकगण गौर कर सकते हैं कि ये वृतान्त यरूशलेम में बड़े पर्वों के समय लोगों को पढ़कर सुनाए जाते थे, या भ्रमण करने वाले लेवीयगण सम्पूर्ण देश के गाँव-गाँव में इन वृतान्तों को सुनाते थे। दाऊद के दिनों के लोग उन्हें सुन-सुनकर आनन्द करते थे कि अब्राहम को मिस्र की सीमा से लेकर फरात नाम नदी तक की भूमि देने की प्रतिज्ञाएँ उनके दिनों में लगभग पूरी हो चुकी हैं (15:18)। दूसरी ओर, बेबीलोन में निर्वासित रहते हुए वे इस तथ्य में शान्ति पाते थे कि कनान देश युग-युग के लिए उन्हें देने की प्रतिज्ञा दी गई थी (17:8)। और जब निर्वासित घर लौटने लगे, उन्हें लगा कि वे प्रतिज्ञाएँ पूरी हो रही थीं (नहे. 9)। इस कारण सम्भव है कि जब ये वृतान्त बताए जाते थे, तो उनमें मामूली बदलाव किए गए, परन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि इनमें ठोस बदलाव किए गए थे।

वास्तव में, उत्पत्ति की पुस्तक स्वयं दूसरी सहस्राब्दी ई.पू. में अपने आरम्भ को बखूबी दर्शाती प्रतीत होती है (मूसा 1500 या 1300 ई.पू. में था)। उदाहरण के लिए, जल-प्रलय के वृतान्त की सर्वोत्तम सादृश्यताएँ अट्राहसिस और गिलगमेश के महाकाव्यों और जल-प्रलय की सुमेरियन कथा में पाई जाती हैं जो लगभग 1600 ई.पू. में रचे गए, जबकि उत्पत्ति 5 और 11 में दी गई वंशावलियों की सादृश्यता सुमेरियन राजाओं की सूची में पाई जाती है जिसका कालखण्ड लगभग 1900 ई.पू. है। जहाँ तक पूर्वजों के वृतान्तों का प्रश्न है, बहुत से लक्षण दर्शाते हैं कि वे दूसरी सहस्राब्दी में थें। उनके नाम उस कालखण्ड के अनुरूप थे और बहुत से पारिवारिक रीति-रिवाज उस युग के बारे में ज्ञात जानकारियों से मिलते जुलते थे। मिस्र में यूसुफ का प्रमुख सलाहकार के पद पर पदोन्नत होना, यद्यपि मिस्री अभिलेखों में उसका उल्लेख नहीं है, सम्राट हिकसास (मिस्र के यहूदी शासक 1600 ई.पू.) के युग में अधिक सम्भावना रखता है। मूसा और पंच-ग्रन्थ के संकलन का कालखण्ड जो भी माना जाए, उनमें और पूर्वजों के समय के बीच कई शताब्दियों का अन्तर था, और माना जा सकता है कि उस दौरान ये वृतान्त मुँह से बोलकर या सम्भवतः किसी प्रकार के लिखित अभिलेख द्वारा अगली पीढ़ियों तक पहुँचाए गए जो अब खो चुका हैं। जो भी हुआ हो, ये सादृश्यताएँ पुष्टि करती हैं कि उत्पत्ति की पुस्तक में निहित इतिहास पूरी तरह से विश्वसनीय है।

पंच-ग्रन्थ में उत्पत्ति की पुस्तक का स्थान

बाइबल की प्रथम पाँच पुस्तकों को यहूदियों द्वारा "व्यवस्था" और मसीहियों द्वारा "पंच-ग्रन्थ" या "मूसा की पाँच पुस्तकें" कहा जाता है। पंच-ग्रन्थ का व्यापक मुख्य विषय मूसा के माध्यम से इस्राएलियों के साथ परमेश्वर की वाचा है जिसने इस्राएल को समस्त जगत के लिए परमेश्वर के अधीनस्थ राष्ट्र (ईश्वर-सत्ता) के रूप में स्थापित किया (जिस राष्ट्र में सामाजिक, धार्मिक और नागरिक क्षेत्रों का प्रशासन परमेश्वर के निर्देशों के अनुसार किया जाता है)। लेखक के विषय में पहले जो चर्चा की जा चुकी है, उसके आधार पर यह विचार करना तर्कसंगत है कि "पंच-ग्रन्थ" के प्रथम श्रोतागण इस्राएली थे जो जंगल से होते हुए यात्रा कर रहे थे (या तो मिस्र से निकली वह पीढ़ी या उनकी सन्तानें)। बाइबल के प्रथम भाग के प्रथम खण्ड के रूप में उत्पत्ति की पुस्तक पाठकों को शेष पंच-ग्रन्थ की ओर ले जाती है, और इस प्रकार शेष बाइबल की ओर ध्यान आकर्षित करती है। यह परमेश्वर के स्वभाव और चरित्र तथा परमेश्वर की सृष्टि में मनुष्य का स्थान आदि बातों को कहानी के रूप में समझाती है। यह पुस्तक पाप और उसके परिणामों का विश्लेषण करती है, और उसके प्रति परमेश्वर की प्रतिक्रिया का वर्णन करती है (और इस प्रकार दिखाती है कि क्यों एक सच्चा धर्म छुटकारा देने वाला धर्म होना चाहिए)। इसमें अब्राहम की बुलाहट का वर्णन है जिसके द्वारा विश्व के सभी देश आशीष पाएँगे, साथ ही इसमें इस्राएल राष्ट्र के पूर्वजों के जन्म और उनके कार्यकाल तथा इस्राएल के मिस्र पहुँचने का उल्लेख है। यह तथ्य कि यहोवा समस्त विश्व का सृष्टिकर्ता है, दिखाता है कि क्यों इस्राएल के पास समस्त मानवजाति के लिए एक सन्देश है। उसके साथ-साथ, उत्पत्ति की पुस्तक अपने आरम्भिक अध्यायों में एवं पूर्वजों के विश्वासयोग्य आज्ञापालन के उदाहरणों के द्वारा आचरण के मानकों को स्थापित करती है।

इस कारण, उत्पत्ति की पुस्तक एक निर्देशों की पुस्तक है और यही कारण है कि यहूदियों ने इसे व्यवस्था की पुस्तकों में शामिल किया है, क्योंकि इब्रानी शब्द *तोरह* में, जिसका अनुवाद अकसर "व्यवस्था" किया जाता है, व्यापक रूप में "निर्देश" का संज्ञान निहित है। इसे उचित रूप में "मूसा की प्रथम पुस्तक" माना जा सकता है क्योंकि यह बाद में आने वाली चार पुस्तकों—निर्गमन से व्यवस्थाविवरण—के लिए प्रस्तावना की भूमिका अदा करती है, जो कि मूसा के जीवन के इर्द-गिर्द संरचित है। जैसा कि पंच-ग्रन्थ के परिचय में समझाया गया है (पृ.35-37) बाइबल की ये प्रथम पाँच पुस्तकें शेष बाइबल के लिए बुनियादी हैं, और उत्पत्ति की पुस्तक पंच-ग्रन्थ की बुनियाद है।

उत्पत्ति की पुस्तक का क्रम

उत्पत्ति की पुस्तक के दो प्रमुख भाग हैं: (1) अब्राहम से पूर्व आदिकालीन जगत का इतिहास (अध्या. 1-11); (2) पूर्वजों का इतिहास (अध्या. 12-50)। इन दोनों भागों के अनुपात महत्त्वपूर्ण हैं: आवश्यक रूप में अध्याय 1-11 प्रमुख घटनाक्रम के मंच का निर्माण करते हैं, विशेषकर अब्राहम, इसहाक, याकूब और उसके पुत्रों के प्रति परमेश्वर के व्यवहार, अर्थात अध्याय 12-50 की विषयवस्तु।

उत्पत्ति की पुस्तक उद्गमों और पीढ़ियों के विषय में है। सृष्टि के ईश्वरीय व्यवस्था-क्रम से आरम्भ होकर, अनेक पीढ़ियों तक एक पारिवारिक वंशावली है जो पाठकों को आदम से लेकर याकूब और उसके पुत्रों तक ले जाती है (पृ.41 पर चार्ट देखें)। यह पारिवारिक वंशावली उत्पत्ति की पुस्तक की रीढ़ की हड्डी है, जो इसकी अलग-अलग कड़ियों को एक सम्पूर्ण अखण्ड स्वरूप देती है, और उन विभिन्न शाब्दिक लक्षणों को समझाती है जो इसे पुराने नियम की अन्य वर्णनात्मक पुस्तकों से अलग ठहराते हैं।

उत्पत्ति की पुस्तक की एक विशेष पहचान उसका शीर्षक " . . . की वंशावली यह है" है (2:4; 5:1 कुछ परिवर्तन के साथ; 6:9; 10:1; 11:10; 11:27; 25:12; 25:19; 36:1; 36:9; 37:2; कृपया नीचे दिया गया चार्ट देखें)। प्रत्येक शीर्षक एक सूक्ष्मदर्शी के समान कार्य करता है जो उस समग्र तस्वीर के, जिसे पिछले भाग में दिया गया है, एक छोटे भाग पर ध्यान केन्द्रित करता है, और इस प्रकार, शीर्षक

उत्पत्ति की पुस्तक में वंशावलियाँ

प्रारम्भिक इतिहास (1:1–11:26)			
परिचय	**विशिष्ट शीर्षक**	**साधारण शीर्षक**	**पवित्रशास्त्र सन्दर्भ**
2:4	आकाश और पृथ्वी	के सृजे जाने का विवरण	2:4–4:26
5:1	आदम	की वंशावली	5:1–6:8
6:9	नूह	की वंशावली	6:9–9:29
10:1	नूह के पुत्रों	की वंशावली	10:1–11:9
11:10	शेम	की वंशावली	11:10-26
कुलपतियों का इतिहास (11:27–50:26)			
11:27	तेरह	की वंशावली	11:27–25:11
25:12	इश्माएल	की वंशावली	25:12-18
25:19	इसहाक	की वंशावली	25:19–35:29
36:1, 9	एसाव	की वंशावली	36:1–37:1
37:2	याकूब	की सन्तान का वर्णन	37:2–50:26

आने वाले भाग के लिए एक परिचय का कार्य करता है। जब उत्पत्ति की पुस्तक इस बात का वर्णन करती है कि कैसे बहुत-सी पीढ़ियों के दौरान पृथ्वी की जनसंख्या में वृद्धि हुई, तब पाठक का ध्यान लगातार प्रत्येक पीढ़ी के किसी विशेष व्यक्ति और उसके वंशजों की ओर आकर्षित होता है।

उत्पत्ति की पुस्तक का एक और महत्त्वपूर्ण लक्षण यह भी है कि उसमें वंशावालियों पर विशेष ध्यान दिया गया है। यद्यपि हो सकता सकता है कि इन वृतान्तों के खण्डों में मर्मभेदी भावनाओं की कमी के कारण इन्हें पढ़ना आधुनिक पाठकों को अरुचिकर लगे, फिर भी, उत्पत्ति की पुस्तक की संरचना में इनका विशेष योगदान है (साथ ही, इसके इतिहास के संज्ञान के लिए देखें; उत्पत्ति की पुस्तक और इतिहास)। अलग-अलग प्रकार की वंशावलियाँ दी गई हैं: पंक्तिबद्ध और विभाजित। उत्पत्ति की पुस्तक में दो *पंक्तिबद्ध वंशावलियाँ* हैं जिनमें 10 पीढ़ियाँ निहित हैं, और प्रत्येक पीढ़ी में से केवल एक ही पूर्वज का नाम दिया गया है। ये प्रमुख वृतान्तों के भागों को जोड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। आदम और हव्वा के कालखण्ड को अध्याय 5 में दी गई वंशावली के द्वारा नूह से जोड़ा गया है। 11:10-26 में दी गई इसी प्रकार की वंशावली नूह के पुत्र शेम को अब्राहम से जोड़ती है। जबकि पंक्तिबद्ध वंशावलियाँ केन्द्रीय परिवार की रेखा का अविभाज्य भाग है, उत्पत्ति की पुस्तक में *विभाजित वंशावलियाँ* भी दी गई हैं जो इस पुस्तक में एक सहायक का कार्य करती हैं। गौण महत्त्व के पात्रों के विषय में सीमित जानकारी देने वाली ये विभाजित वंशावलियाँ शाखायुक्त पारिवारिक वृक्षों को प्रस्तुत करती हैं जिनमें अकसर कुछेक पीढ़ियों का ही वर्णन होता है (10:1-32; 25:12-18; 36:1-8; 36:9-43 देखें)। जहाँ पंक्तिबद्ध वंशावलियाँ पाठकों को शीघ्रता से "क" से "ख" की लम्बी यात्रा पर ले जाती हैं, वहीं विभाजित वंशावलियाँ एक गतिरोधी यात्रा है (ऊपर दिया गया चार्ट देखें)।

उत्पत्ति की पुस्तक में वंशावलियाँ

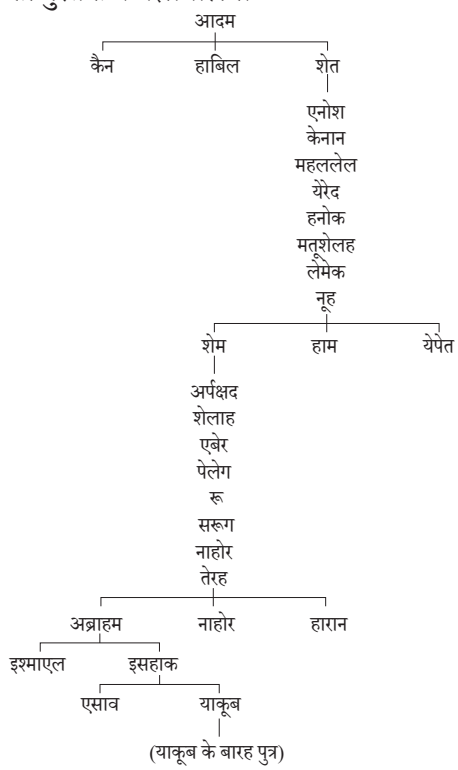

मुख्य विषय

उत्पत्ति की पुस्तक का मुख्य विषय सृष्टि की उत्पत्ति, पाप और पुनः सृष्टि की उत्पत्ति है। यह बताती है कि परमेश्वर ने कैसे एक बहुत अच्छे जगत की सृष्टि की थी, परन्तु मनुष्यों के आज्ञाउल्लंघन के कारण वह जगत जल-प्रलय के द्वारा नष्ट कर दिया गया। जल-प्रलय के बाद आरम्भ हुआ नया जगत भी मनुष्य के पाप के कारण भ्रष्ट हो गया (अध्याय 11)। अब्राहम की बुलाहट जिसके द्वारा सभी देशों को आशीष मिलेगी एक आशा प्रदान करती है कि परमेश्वर का उद्देश्य अन्ततः अब्राहम के वंशजों के द्वारा साध्य किया जायेगा (अध्याय 49)।

प्रमुख प्रसंग

1. प्रभु परमेश्वर जो सर्वश्रेष्ठ और सर्वव्यापी दोनों ही है, जिसने पृथ्वी को अपने निवास स्थान के लिए बनाया, वह मनुष्यों को अपने याजकीय अधिकारियों या राज-प्रतिनिधियों के रूप में अधिकृत करता है ताकि वे पृथ्वी को भर दें और देखभाल सहित अन्य प्राणियों पर प्रशासन करे (1:1-2:25)।

2. अपने याजकीय और राजकीय कर्तव्यों का परित्याग करके प्रथम मानव दम्पति ने परमेश्वर के विरुद्ध बलवा किया और सर्प के परामर्शों को मानकर परमेश्वर के साथ विश्वासघात किया; उनके स्वेच्छा से अवज्ञा करने के कारण मानव के स्वभाव और सृष्टि के सन्तुलित क्रम पर मौलिक प्रभाव पड़ा (3:1-24; 6:5-6)।

3. परमेश्वर अनुग्रह सहित घोषणा करता है कि स्त्री का वंश मानवजाति को सर्प (शैतान) की तानाशाही से छुटकारा देगा। इसके बाद, उत्पत्ति की पुस्तक में एक विशिष्ट परिवार की वंशरेखा को अंकित किया गया है और प्रकाश डाला गया है कि किस प्रकार उसके सदस्यगण परमेश्वर के साथ विशेष सम्बन्धों का आनन्द प्राप्त करते हैं, और एक ऐसे संसार के लिए आशीष का स्रोत बनते हैं जो परमेश्वर के शाप के अधीन है (3:15; 4:25; 5:2; 6:8-9; 11:10-26; 12:1-3; 17:4-6; 22:16-18; 26:3-4, 24; 27:27-29; 28:14; 30:27-30; 39:5; 49:22-26)।

4. मनुष्य के आज्ञाउल्लंघन का नतीजा यह होता है कि उसका भूमि के साथ अद्वितीय सम्बन्ध विघटित हो जाता है जिसका परिणाम मनुष्य के लिए कठोर परिश्रम, यहाँ तक कि अकाल भी ले आता है। यद्यपि उत्पत्ति की पुस्तक इस टूट चुके सम्बन्ध के प्रभावों का चित्रमय वर्णन करती है, वह ऐसे कठोर परिश्रम से छुटकारा दिलाने वाली विशेष पारिवारिक वंशरेखा का चित्रण भी करती है (3:17-19; 5:29; 9:20; 26:12-33; 41:1-57; 47:13-26; 50:19-21)।

5. जबकि स्त्री का दण्ड प्रसव की पीड़ा पर केन्द्रित है (3:16), स्त्री इस अद्वितीय परिवार की वंशावली को आगे बढ़ाने में आवश्यक भूमिका का निर्वाह भी करती है; परमेश्वर की सहायता से बांझपन पर

भी विजय पा ली जाती है (11:30; 21:1-7; 25:21; 29:31-30:24; 38:1-30)।

6. मानव के स्वभाव की भ्रष्टता के कारण परिवारों में कलह पैदा हो जाती है, क्योंकि भाईचारे के प्रेम का स्थान रोष और घृणा ले लेती है (4:1-16; 13:5-8; 25:22-23, 29-34; 27:41-45; 37:2-35)। यद्यपि उत्पत्ति की पुस्तक पारिवारिक झगड़ों की वास्तविकता पर प्रकाश डालती है, तौभी पारिवारिक वंशरेखा के सदस्यों में मेल-मिलाप के अभिकर्ता बनने की सम्भावना भी है (13:8-11; 33:1-11; 45:1-28; 50:15-21)।

7. यद्यपि अदन से निष्कासन और समस्त पृथ्वी पर बिखराव परमेश्वर द्वारा दुष्टों को दण्ड देने के लिए उपयोग किए जाते हैं (3:22-24; 4:12-16; 11:9), फिर भी, देश की प्रतिज्ञा परमेश्वर के अनुग्रह का एक चिह्न है (12:1-2, 7; 13:14-17; 15:7-21; 26:2-3; 28:13-14; 50:24)।

8. यद्यपि परमेश्वर समस्त मानवजाति का उसकी भ्रष्टता के कारण विनाश करने पर है (6:7, 11-12; 18:17-33), उसकी अब भी इच्छा है कि पृथ्वी उन लोगों से भर जाए जो धर्मी हैं (1:28; 8:17; 9:1, 7; 15:1-5; 17:2; 22:17; 26:4; 28:3; 35:11; 48:4)।

उद्धार के इतिहास का सारांश

आधुनिक पाठकगण उत्पत्ति की पुस्तक के कुछ चुनिन्दा भागों से परिचित हो सकते हैं। फिर भी, अधिकांश पाठकों को यह समझने में कठिनाई होती है कि कैसे इस पुस्तक के एक दूसरे से पृथक तत्व मिलकर एक एकीकृत अभिलेख बनाते हैं। परिणामस्वरूप, अलग-अलग घटनाक्रमों को अकसर एक दूसरे से पृथक मानकर पढ़ा जाता है, जिसमें इस बात को पर्याप्त महत्त्व नहीं दिया जाता कि किस प्रकार यह व्यापक शाब्दिक सन्दर्भ ऐसे जटिल वृतान्त को आकार देता है। उत्पत्ति की पुस्तक की 'बड़ी तस्वीर' को आत्मसात करना अत्यन्त आवश्यक है।

इस तस्वीर में एक परिवार की वंशावली प्रमुख है जो इस समग्र पुस्तक की रीढ़ की हड्डी का काम करती है। इस वंशावली के महत्त्व को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर नहीं बताया जा सकता, क्योंकि 3:15 से आरम्भ होकर स्त्री का यह वंश सर्प की पराजय और पृथ्वी एवं उसमें की सभी वस्तुओं के पुनर्गठन के लिए आशा का स्रोत बन जाता है। कुछ समय बाद स्त्री का यह वंश शेत के माध्यम से नूह के वंश में से सामने आता है जो एक "धर्मी जन" है (6:9), जिस पर परमेश्वर का अनुग्रह है, जिस कारण परमेश्वर ने उसे और उसके परिजनों को जल-प्रलय में नाश होने से बचा लिया। यह वंशावली नूह से लेकर अब्राहम तक जाती है जिसमें पृथ्वी के सब घराने आशीष पाएँगे (12:1-3)। जब परमेश्वर अब्राहम के साथ ख़तने की वाचा स्थापित करता है, तब आशीष की ईश्वरीय प्रतिज्ञा अब्राहम के पुत्र इसहाक के द्वारा एक भावी राजकीय वंशज से जुड़ जाती है।

उत्पत्ति की पुस्तक जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, आशीष की प्रतिज्ञा पहलौठे पुत्र के साथ घनिष्ठता से जुड़ती जाती है। फिर भी, यह इस पुस्तक में एक असामान्य मूल भाव के साथ मेल खाता है। पहलौठे का अधिकार (पद) हमेशा ही प्रथम जन्मे पुत्र को नहीं मिलता। जब इसहाक के जुड़वा पुत्रों का जन्म होता है, तब एसाव और उसके छोटे भाई याकूब के बीच लम्बा संघर्ष चलता है। जब एक कटोरी दाल के लिए एसाव अपने पहलौठेपन का अधिकार याकूब को बेच देता है (25:29-34) तब याकूब इसहाक को धोखा दे कर पहलौठे पुत्र की आशिषें प्राप्त कर लेता है (27:27-29)। यह आशीष, जो परमेश्वर द्वारा अब्राहम से की गई प्रतिज्ञा को प्रतिध्वनित करने वाले शब्दों में अभिव्यक्त होती है, इस बात की पुष्टि करती है कि वह याकूब ही है जिससे राजकीय वंश आगे बढ़ेगा।

रूबेन के स्थान पर यूसुफ का पहलौठेपन पर समृद्धि पाना, और साथ ही उसके स्वप्न, शुरु में इस ओर संकेत करते हैं कि सम्भावित राजकीय वंश उसी से आगे बढ़ेगा। यद्यपि उसे उसके भाइयों द्वारा गुलाम के रूप में बेच दिया जाता है, तौभी बाद में मिस्र का अधिकारी ठहराया जाना यह प्रमाणित करता है कि परमेश्वर उसके साथ है। बाद में जब इस परिवार का पुनर्मेल हो जाता है और याकूब पहलौठे की आशिषें यूसुफ के छोटे पुत्र एप्रैम को देता है, तब भविष्य की राजकीय वंशावली एप्रैम के वंशजों से जुड़ जाती है (48:13-19)। किन्तु उत्पत्ति की पुस्तक में एक रुचिकर मोड़ आता है। यूसुफ के महत्त्व के बावजूद, उसके बड़े भाई यहूदा को लेकर एक उल्लेखनीय परिवर्तन होता है, और राजशाही उसके वंशजों के साथ भी जुड़ जाती है (49:8-12)।

उत्पत्ति की पुस्तक के बाद के दिनों में, एप्रैम का वंश तब इस्राएल का नेतृत्व करता है जब यहोशू इस्राएलियों की कनान देश में पहुँचने में अगुवाई करता है। किन्तु शमूएल के दिनों में एप्रैमी तब अस्वीकृत कर दिए जाते हैं जब परमेश्वर इस्राएल में प्रथम राजवंश की स्थापना के लिए दाऊद को चुनता है (भज. 78:67-72 देखें)। अन्त में उत्पत्ति की पुस्तक में पारिवारिक वंशावली से जुड़ी ईश्वरीय प्रतिज्ञा यीशु मसीह में पूरी होती है, जो परमेश्वर का देह में प्रकट पुत्र है, और लेपालकपन के कारण "दाऊद का पुत्र, अब्राहम का पुत्र" बनता है (मत्ती 1:1; साथ ही प्रेरि. 3:25-26; गला. 3:16 देखें)। एक विशेष राजा की प्रतीक्षा करने के द्वारा, जो मानवजाति के लिए परमेश्वर की आशिषों का माध्यम बनेगा, उत्पत्ति की पुस्तक वह बुनियाद प्रदान करती है जिस पर शेष बाइबल स्थिर रहती है।

उत्पत्ति की पुस्तक यीशु मसीह की ओर संकेत करती है, इस कथन को लेकर पाठक को सावधानी बरतने की आवश्यकता है क्योंकि उत्पत्ति की पुस्तक मसीह के सिद्धान्त को एक समस्त विकसित सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत नहीं करती है। उत्पत्ति की पुस्तक में आरम्भ हुई "उद्धार की ईश्वरीय प्रतिज्ञा" जो स्त्री के वंश से जुड़ी है, शेष पुराने नियम में विस्तार पाती है। फिर भी उत्पत्ति की पुस्तक में प्रस्तुत किए गए विचार अन्तिम वास्तविकता से पूर्णतः सुसंगत हैं।

जबकि *एक आने वाले राजा से जातियों का* आशीष पाने का विचार उत्पत्ति की पुस्तक का केन्द्रीय विचार है, फिर भी अन्य सम्बन्धित विषय-वस्तु भी साथ-साथ विकसित होती हैं। इनमें से एक सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अब्राहम को दी गई परमेश्वर की वह प्रतिज्ञा है कि वह एक *बड़ी जाति* बनेगा (उत्पत्ति 12:2)। इसमें *देश* और *वंशजों* के दो जुड़वा विचार भी प्रमुख हैं, और ये दोनों ही राष्ट्र की स्थापना के लिए अति आवश्यक घटक हैं।

"राष्ट्र" पर दिए गए इस बल को हमें समस्त पृथ्वी के लिए परमेश्वर के उद्देश्य के प्रकाश में समझना होगा। इसे उसका निवासस्थान बनना है जहाँ वह राजकीय याजकों की मानवीय आबादी से घिरे रहेगा। किन्तु,

जब आदम और हव्वा ने परमेश्वर के साथ विश्वासघात किया, उन्होंने अपने विशेषाधिकार को खो दिया। बाद में जब परमेश्वर इस्राएलियों के बीच रहने आता है, तब राष्ट्र के रूप में इस्राएलियों को राजकीय याजक बनने का अवसर दिया जाता है (निर्ग. 19:6)। दुर्भाग्य वश, वे कभी भी पूरी तरह समझ नहीं सके कि परमेश्वर उन्हें क्या बनाना चाहता है। यद्यपि वे असफल रहे, तौभी वे यह संकेत देते हैं कि पृथ्वी को कैसे परमेश्वर के शासन के अधीन होना चाहिए।

यीशु मसीह के आगमन के साथ ही इस्राएल का परमेश्वर द्वारा राष्ट्रीय प्रशासन अन्तर्राष्ट्रीय राजकीय याजकों के समाज में बदल दिया जाता है जिसमें यहूदी, सामरी और अन्यजाति लोग भी शामिल हैं (1 पत. 2:9)। यद्यपि "कलीसिया" पृथ्वी पर परमेश्वर का निवास स्थान बनती है, बुराई अब भी अस्तित्व में है। मसीह के लौटने (द्वितीय आगमन) और अन्तिम न्याय के बाद ही सब बातों का पुनर्गठन किया जाएगा और एक नई पृथ्वी सृजी जायेगी। उस समय नया यरूशलेम उत्पत्ति की पुस्तक में आरम्भ हुई ईश्वरीय परियोजना की पूर्णता पर मुहर लगाएगा। प्रकाशितवाक्य 21-22 में यूहन्ना को मिले दर्शन का उत्पत्ति 1-2 से निकट सम्बन्ध है।

("उद्धार के इतिहास" के स्पष्टीकरण के लिए, पृ.23-26 पर बाइबल का सिंहावलोकन देखें। साथ ही पृ.2635-2661 पर लेख पुराने नियम में उद्धार का इतिहास: मसीह के लिए मार्ग बनाना भी देखें)।

उत्पत्ति की पुस्तक और इतिहास

स्पष्ट है कि उत्पत्ति की पुस्तक की सभी घटनाएँ मूसा के समय से बहुत पहले की हैं, और यही पूर्वजों के विषय में भी सत्य है (अध्या. 12-50), और इससे भी अधिक यह आदिकाल के विषय में सत्य है (अध्या. 1-11)। इसके अलावा, उत्पत्ति की पुस्तक के अध्याय 1-11 और मेसोपोटामिया की प्राचीन कथाओं में महत्त्वपूर्ण समानताएँ हैं (उदा. सृष्टि की उत्पत्ति और जल-प्रलय)। अब क्योंकि इन कहानियों को सामान्यतः "पौराणिक कथाएँ" समझा जाता है, इसलिए कुछ लोग मानते हैं कि अध्याय 1-11 में प्रस्तुत वृतान्तों के लिए भी यही उचित श्रेणी है। कुछ यह तर्क भी देते हैं कि पूर्वजों की कहानियाँ पौराणिक हैं और वास्तविक लोगों और घटनाओं से उनका सम्बन्ध बहुत कम है। इन मसलों का समाधान करने के लिए प्रथम प्रश्न यह है कि क्या उत्पत्ति की पुस्तक स्वयं "इतिहास" होने का दावा करती है?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए आवश्यक है कि "इतिहास" की एक अच्छी, स्पष्ट, और सटीक परिभाषा दी जाए। आम भाषा में "इतिहास" शब्द का आशय उन घटनाओं के विवरण से होता है, जिनके विषय में लेखक का यह विश्वास होता है कि वे वास्तव में घटी थीं; अपने आप में शब्द "इतिहास" स्वयं ही यह टिप्पणी नहीं करता कि उसमें निहित वर्णन सम्पूर्ण और पक्षपातहीन, ईश्वरीय गतिविधियों से मुक्त, सटीक रूप में कालक्रमानुसार है, या सांकेतिक एवं काल्पनिक (कभी-कभी पौराणिक भी कहा जाता है) तत्वों के साथ या उनके बिना है।

इस परिभाषा के अनुसार यह आसानी से देखा जा सकता है कि उत्पत्ति की पुस्तक का लक्ष्य पौराणिक घटनाओं का नहीं, वरन् वास्तविक घटनाओं का अभिलेख बनाना है। यह पुस्तक अपने यहूदी पाठकों को बताती है कि उनके पूर्वज मिस्र में कैसे आए; वंशावलियाँ याकूब और उसके पुत्रों को प्राचीन पीढ़ियों से पीछे आदम और हव्वा तक जोड़ती हैं जो प्रथम मानव दम्पति था। इसके अलावा, यह पुस्तक *वर्णनात्मक गद्य* है, जिसका इतिहास का दोबारा ब्योरा देना बाइबल में प्रमुख कार्य है। उत्पत्ति 1:1-2:3 में दिया गया सृष्टि के सृजन का इतिहास शेष पुस्तक से शैलीगत रूप में भिन्न है; यह *उन्नत गद्य* है, और इसकी ऐतिहासिकता बाइबल के अन्य स्थानों में स्वीकृत है (उदा. भज. 136:4-9)। (उत्पत्ति की पुस्तक और विज्ञान देखें)।

उत्पत्ति 1-11 की मेसोपोटामिया की कहानियों से सादृश्यता इस निष्कर्ष का समर्थन करती है कि इन अध्यायों का अभिप्राय इतिहास को लिपिबद्ध करना है। मेसोपोटामिया की कहानियों का लक्ष्य स्पष्ट रूप में वास्तविक इतिहास की घटनाओं का प्रचार करना है, परन्तु वे ऐसा "पौराणिक रूप में" करती हैं। किन्तु, उत्पत्ति में वर्णित घटना क्रम मूल रूप में इसलिए भिन्न है क्योंकि उनमें एकमात्र सच्चे परमेश्वर की गतिविधियों का ब्योरा है। मेसोपोटामिया की कहानियों के समान उत्पत्ति की पुस्तक भी एक भव्य वृतान्त का आरम्भ दर्शाती है जिसमें संसार के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण प्रदान किया गया है। इस दृष्टिकोण के लिए आवश्यक आधार बनाने के लिए लेखक को वास्तविक घटनाओं के उपयोग की आवश्यकता थी (यद्यपि उनका अर्थ धर्म-विज्ञान की दृष्टि से है)। इस प्रकार उत्पत्ति की पुस्तक का लक्ष्य इन घटनाओं का वास्तविक अभिलेख प्रस्तुत करना है जो (विश्व के प्रति) बाइबल-सम्मत-दृष्टिकोण से सुसंगत हो। इस बाइबल-सम्मत दृष्टिकोण में यह विचार शामिल है कि इस्राएल का ईश्वर यहोवा ही सम्प्रभु के रूप में आकाश और पृथ्वी का सृजनहार है, जिसने मानवजाति को इसलिए बनाया कि वे उसे जाने और उस से प्रेम करे; कि समस्त मानवजाति का आदम और हव्वा के आज्ञाउल्लंघन के कारण पाप में पतन हो गया, और परमेश्वर ने इस्राएल को एक साधन के रूप में चुना कि उसके द्वारा समस्त मानवजाति सच्चे परमेश्वर को जानने की आशीष प्राप्त करे। स्पष्ट है कि इस दृष्टिकोण को स्थापित करने के लिए उत्पत्ति की घटनाओं का ऐतिहासिक होना आवश्यक है।

साथ ही, उत्पत्ति की पुस्तक से उठने वाले सभी प्रश्नों के उत्तर देना सम्भव नहीं है। उदाहरण के लिए, इस पुस्तक के विश्वासयोग्य व्याख्याकार इस बात में आपस में असहमत हैं कि आदम अब्राहम से कितने वर्षों पहले था, या फिर सृष्टि के उत्पत्ति की कालावधि कितनी थी (उत्पत्ति की पुस्तक और विज्ञान देखें)। इस पुस्तक में अब्राहम के सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्धित पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है। यहाँ तक कि यूसुफ ने जिस फिरौन की सेवा की उसका भी नाम नहीं दिया गया। पुरातात्विक खनन के द्वारा उत्पत्ति की कुछ घटनाओं की प्राचीन निकट पूर्व में पुष्टि करना सम्भव है, ताकि उन घटनाओं के लिए कम से कम एक विश्वसनीय परिदृश्य दिया जा सके। परन्तु यह सत्य बना रहता है कि मूसा ने प्राचीन दिनों की बातों को समग्र रूप में विस्तार से बताने का प्रयास नहीं किया है; उसका उद्देश्य कुछ और है।

उत्पत्ति की पुस्तक और विज्ञान

उत्पत्ति का विज्ञान के साथ सम्बन्ध मूल रूप में यह प्रश्न है कि पाठक सृष्टि के सृजन और मनुष्य के पाप में पतन (अध्याय 1-3) और जल-प्रलय (अध्याय 6-9) के विवरण को किस दृष्टि से पढ़ता है। उत्पत्ति 1 किस प्रकार के "दिनों" का वर्णन करती है? यह सब कितने समय पहले हुआ होगा? क्या सभी प्राणी वैसे ही सृजे गए, जैसे वे आज हैं? क्या आदम और हव्वा वास्तविक व्यक्ति थे? क्या सभी मनुष्य उनकी

ही सन्तानें हैं? नूह के दिनों का जल-प्रलय पृथ्वी के कितने भाग में आया था? भौगोलिक संरचना पर उसका कितना प्रभाव पड़ा था?

विश्वासयोग्य व्याख्याकारों ने उत्पत्ति के अध्याय 1 के सृष्टि का विवरण देने वाले सप्ताह को एक आम दिनों (जैसे "कैलेण्डर का दिन") वाले नियमित सप्ताह के रूप में; या फिर भौगोलिक युग के एक क्रम (जैसे "दिन एक युग") के रूप में; या परमेश्वर के "काम करने के दिनों" को मनुष्यों के काम करने के सप्ताह के दृश्य ("एक समान दिनों" की विचारधारा) के रूप में; या फिर सृष्टि करने के सप्ताह को दर्शाने या चित्रित करने वाले एक शाब्दिक साधन के *रूप में* जिसमें तात्कालिक क्रम (शाब्दिक ढाँचा) का विचार नहीं किया गया है, स्थापित करने के लिए कुछ तर्क दिए हैं। कुछ लोगों ने यह बताया है कि उत्पत्ति 1:2 "पृथ्वी बेडौल और वीरान थी" आरम्भिक दिनों में शैतान के विद्रोह के फलस्वरूप पृथ्वी की दशा का वर्णन है, उसके पश्चात सृष्टि की उत्पत्ति का सप्ताह आया ("समय में अन्तर का सिद्धान्त")। इसके अतिरिक्त अन्य विचार भी हैं, परन्तु ये पाँच विचार प्रमुख हैं।

जब हम उत्पत्ति की पुस्तक और इतिहास वाले खण्ड में की गई चर्चा को ध्यान में रखते हैं, तब इनमें से कोई भी दृष्टिकोण उत्पत्ति 1 की ऐतिहासिकता से इनकार नहीं करता। इनमें से प्रत्येक पाठ को बाइबल के उन अन्य पाठों से, जिनमें सृष्टि के सृजन का विषय है, मिलाकर देखा जा सकता है। इनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निर्गमन 20:11 है, "यहोवा ने छः दिन में आकाश और पृथ्वी, समुद्र और जो कुछ उनमें है, सबको बनाया, और सातवें दिन विश्राम किया": अब क्योंकि इस वचन में उत्पत्ति 1:1-2:3 की प्रतिध्वनि है, इसलिए यहाँ शब्द "दिन" का अर्थ वही है जो उत्पत्ति 1 में है। इस कारण यहाँ एक सामान्य-दिन की व्याख्या करने की *आवश्यकता* नहीं है, और न ही इसकी एक सामान्य-दिन के रूप में व्याख्या करना *असम्भव* है। इन विभिन्न विचारधाराओं के पक्ष और विपक्ष में तर्कों का कारण इब्रानी भाषा के शब्दों का ग़लत तरीके से विस्तृत अर्थ निकालना है ("दिन" के सामान्य अर्थ से परे अर्थ निकालना), और इन तर्कों की समीक्षा करना इस चर्चा के लक्ष्य से परे जाना होगा।

अगला प्रश्न वंशावलियों को लेकर है: क्या ये वंशावलियाँ प्रत्यक्ष पिता-से-पुत्र के तहत वंश का वर्णन करती हैं, या इनमें कोई अन्तर है? इब्रानी शब्द "पिता" का उपयोग किसी दूर के पूर्वज के लिए भी किया जा सकता है, और "पुत्र" किसी दूर के वंश (नाती-पोते) का उल्लेख भी हो सकता है। इसी प्रकार "पिता बनने" का अभिप्राय "का पूर्वज बनना" भी हो सकता है। दूसरे शब्दों में, इब्रानी वंशावलियों की परम्पराओं में पीढ़ियों के बीच अन्तर की सम्भावना है; वंशावलियाँ समय की ओर संकेत करने के उद्देश्य से नहीं दी गई हैं।

इन मसलों का तब अधिक महत्त्व नहीं रह जाता जब यह तथ्य स्मरण किया जाता है कि वास्तव में बाइबल के किसी भी वृतान्त में सृष्टि के सप्ताह (निर्ग. 20:11 के बाहर) की लम्बाई की गणना का प्रयास नहीं किया गया है, और न ही बाइबल का कोई लेखक वंशावलियों में जीवन विस्तार को जोड़कर सही समय की गणना करता है।

क्या उत्पत्ति 1 के वृतान्त को "वैज्ञानिक अभिलेख" कहा जा सकता है? एक बार फिर सावधानीपूर्वक परिभाषा प्राप्त करने की आवश्यकता है। क्या उत्पत्ति का पहला अध्याय भौतिक जगत के आरम्भ का वास्तविक वर्णन प्रस्तुत करता है, इस प्रश्न का उत्तर हाँ ही होना चाहिए। दूसरी ओर, क्या उत्पत्ति के पहले अध्याय में दी गई जानकारी आधुनिक विज्ञान के उद्देश्यों की समानता में है? इस प्रश्न का उत्तर है, नहीं, कुछ चुनौतियों पर विचार करें। उदाहरण के लिए शब्द "जाति" का अर्थ "प्रजाति या नस्ल" से नहीं है, वरन् उसका सरल अभिप्राय "श्रेणी" से है, और इसका इशारा प्रजाति या परिवार या अधिक विस्तार में समूह के सामान्य वर्गीकरण की ओर हो सकता है। वास्तव में पेड़ पौधों की दो सामान्य श्रेणियाँ हैं, छोटे बीज वाले वृक्ष और दूसरे बड़े तने वाले वृक्ष। मैदान में विचरण करने वाले पशुओं का वर्गीकरण घरों में पाले जाने वाले पशु ("घरेलू पशु"); छोटे पशु जैसे चूहे, छिपकली और मकड़ियां ("रेंगने वाले जन्तु"); और बड़े एवं शिकारी पशु ("पृथ्वी के जंगली जानवर") इत्यादि के रूप में किया गया है। वास्तव में मनुष्य को छोड़ अन्य किसी भी प्रजाति का समुचित इब्रानी नाम नहीं है, यहाँ तक कि सूर्य और चन्द्रमा का भी आम इब्रानी नाम नहीं है (1:16)। इस वचन में "पृथ्वी से वनस्पति" के उगने की प्रक्रिया का (1:12), अथवा किस प्रक्रिया से विभिन्न प्रकार के पशु प्रकट हुए, इसका कोई वर्णन नहीं है—हालाँकि यह तथ्य, कि वे परमेश्वर की आज्ञा के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आए, दर्शाता है कि यह स्वयं भौतिक जगत में अन्तर्निहित किसी प्राकृतिक शक्ति के कारण नहीं था।

यह विवरण अपने मूल उद्देश्य की पूर्ति में सफल रहा है, कि सीनै पर्वत क्षेत्र में खानाबदोश चरवाहों के समाज को सृष्टिकर्ता की असीम सृजनशील भलाई का आनन्द मनाने में सक्षम बनाना; विवरण में यह स्पष्ट नहीं बताया गया है कि "क्यों," उदाहरण के रूप में, एक मकड़ी सांप से भिन्न है, न ही यह कि विभिन्न प्राणियों में क्या आनुवांशिक सम्बन्ध हो सकते हैं। साथ ही, जब इस वृतान्त को उसके उद्देश्य के अनुसार ग्रहण किया जाता है, तब विश्व को लेकर एक दार्शनिकता आकार लेती है जो विज्ञान के अनुसार है (सम्भवतः यही एक वैश्विक दार्शनिकता है जो विज्ञान को वास्तव में सम्भव बनाती है)। यह ऐसे जगत के विषय में सिद्धान्त है जिसे एक भले और बुद्धिमान परमेश्वर ने बनाया, और यह मनुष्यों के आनन्द और शासन करने के लिए सिद्ध रूप में उपयुक्त है। इस संसार में जो वस्तुएँ है, मनुष्य उनकी प्रकृति जान सकता है, कम से कम आंशिक रूप में। मनुष्य का इन्द्रियबोध और बुद्धि संसार के बारे में जानने-समझने और सत्य बातें कहने के लिए उचित साधन हैं। (पाप का प्रभाव अवश्य ही इस प्रक्रिया में बाधा डाल सकता है।)

यह स्पष्ट है कि आदम और हव्वा को वास्तविक लोग बताया गया है। इस विवरण में उनकी भूमिका का, उस माध्यम के रूप में जिससे पाप ने जगत में प्रवेश किया, अर्थ यह है कि वे मानवजाति के उद्गम समझे जाते हैं। परमेश्वर का स्वरूप उन्हें सभी पशुओं से अलग करता है, और यह उन पर परमेश्वर का विशेष अनुग्रह है, (अर्थात, यह विशुद्ध "प्राकृतिक" विकास नहीं है)। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि सभी मनुष्य भाषा, नैतिक न्याय की परख, विवेक और सौंदर्य की योग्यता रखते हैं जो पशुओं में पाई जाने वाली सामर्थ से असमान और परे है; कोई भी विज्ञान जो इस तथ्य की अनदेखी करता है, वह वास्तविकता का वर्णन विश्वासयोग्यता से नहीं करता। बाइबल की विश्व दार्शनिकता पाठक की इस उम्मीद में भी भली-भाँति उसकी अगुवाई करती है कि सभी मनुष्यों को अब एक परमेश्वर की आवश्यकता है, कि पाप की ओर उनका रुझान है, और साथ ही, कि उनके लिए एक सच्चे परमेश्वर पर विश्वास करने की सम्भावना है।

जल-प्रलय का वृतान्त पढ़ते समय पाठक को ऐसी ही सावधानी बरतने की आवश्यकता है। वचनों की टिप्पणियों में इस विषय पर

विस्तार से चर्चा की जाएगी कि मूसा जल-प्रलय के वर्णन में समस्त पृथ्वी पर किस सीमा तक जल-प्रलय आने का विचार रखता था। अवश्य ही जल-प्रलय का जैसा वर्णन है उस से स्पष्ट है कि वह सर्वत्र और अति विनाशकारी था, परन्तु निश्चय के साथ दावे करने में कठिनाइयाँ है कि वर्णन के अनुसार यह कितना फैला था। इस कारण, आज दिखाई देने वाली सभी भौगोलिक संरचनाएं—जैसे भूमि की परतें, जीवाश्म और विकृतियाँ इत्यादि के लिए जल-प्रलय को ज़िम्मेदार ठहराना असावधानी होगी। भू-वैज्ञानिक इस बात पर सहमत हैं कि विनाशकारी घटनाएँ, जैसे ज्वालामुखी फूटना और बड़े पैमाने के जल-प्रलय, भूमि पर व्यापक प्रभाव डालते आए हैं, परन्तु प्रश्न उठता है कि क्या ये घटनाएँ वास्तव में उस प्रभाव को उत्पन्न कर सकती हैं जिनके बारे में दावा किया जा सकता है। एक बात और है कि ये मसले स्वयं लेखक के दायरे में नहीं आते हैं, इस कारण ज़ोर देकर कहा जा सकता है कि परमेश्वर को समस्त मानवजाति में रुचि है।

इस प्रकार, यद्यपि उत्पत्ति की पुस्तक का उपयोग इस तरह करना ग़लत है कि मानो वह प्रत्यक्ष रूप में आधुनिक वैज्ञानिक स्वरूप में सूचनाएँ प्रदान कर रही हो, परन्तु फिर भी उसके ऐतिहासिक विवरणों और उसकी परमेश्वर-केन्द्रित विश्व दार्शनिकता की पुष्टि करने के लिए यह आवश्यक है, ताकि एक अच्छी वैज्ञानिक खोज के लिए एक उचित बुनियाद स्थापित की जा सके।

इक्कीसवीं सदी में उत्पत्ति की पुस्तक को पढ़ना

उत्पत्ति की पुस्तक हजारों वर्ष पूर्व लिखी गई है—एक ऐसी वास्तविकता जिसे आधुनिक भाषाओं के अनुवादों में इसे पढ़ते समय बड़ी आसानी से भुला दिया जाता है। उसका लेखन एक ऐसे युग और संस्कृति में किया गया था जो अधिकांश आधुनिक पाठकों के अनुभवों से बहुत दूर हैं। पाठकों और बाइबल की विषयवस्तु के बीच इस दूरी का उचित ध्यान रखा जाना चाहिए। जब आधुनिक अंग्रेजी के अनुवादक इस अन्तर को दूर करने के लिए एक सेतु निर्माण करने का प्रयास करते हैं तब मूल इब्रानी भाषा में प्रदर्शित वाक्य विश्लेषण और शब्द प्रभाव को उसी रूप में प्रस्तुत करना हमेशा ही सम्भव नहीं होता। इसके अलावा, उत्पत्ति में जिन साहित्यिक तकनीकियों का उपयोग किया गया है वे आज सामान्य रूप में प्रचलित नहीं हैं। कहानियों के ताने-बाने में बुने और प्राचीन निकट पूर्व की संस्कृति में रचे-बसे ये लक्षण रुकावटें उत्पन्न करते हैं जिन्हें अत्यधिक धीरज के साथ बाइबल की विषयवस्तु का अध्ययन करने पर समझा जा सकता है।

उत्पत्ति का अर्थ-स्पष्टीकरण इसलिए भी और जटिल हो जाता है क्योंकि यह परमेश्वर की प्रेरणा से रचा गया वचन भी है। इस तथ्य के कारण कुछ पाठक मान लेते हैं कि यह त्रुटिरहित विषयवस्तु उनके ईश्वरीय लेखक के समान ही सर्वज्ञान सम्पन्न होगी। तब वे उन प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयत्न करते हैं जिनके उत्तर देने का प्रयास उत्पत्ति की पुस्तक भी नहीं करती। किन्तु फिर भी बाइबल के अन्य किसी भाग के समान ही उत्पत्ति की पुस्तक अपनी जानकारियों में सीमित और चयनशील है; वह पाठकों को वह सारी जानकारियाँ नहीं देती जो सम्भवतः पाठकगण प्राप्त करना चाहते हैं। अकसर, पाठकगण ऐसे प्रश्न पूछ सकते हैं जो अपने आप में वैध तो हैं परन्तु पुस्तक के पाठ में अनुत्तरित हैं। उदाहरण के लिए, उत्पत्ति इस प्रश्न का उत्तर नहीं देती कि सर्प परमेश्वर का शत्रु कैसे बना या कैन को पत्नी कहाँ से मिली। ऐसे प्रश्नों की संख्या कई गुना बढ़ सकती है। फलस्वरूप, व्यक्ति की स्वाभाविक उत्सुकता के लिए एक उचित माध्यम बनाना आवश्यक है, क्योंकि उत्पत्ति का प्रेरणा-प्राप्त लेखक इरादतन कुछ निश्चित बातों ही की जानकारी देता है। परन्तु फिर भी, विषयवस्तु केवल इसलिए परमेश्वर का वचन होने से स्थगित नहीं होता क्योंकि वह पाठकों को जानकारी प्रदान करने में सीमित है; परमेश्वर के वचन को सत्य ठहरने के लिए उसका सुविस्तृत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्यिक गद्य के रूप में उत्पत्ति की सीमाओं को लेकर यह अवलोकन तब विशेष रूप में महत्त्वपूर्ण है, जब पुस्तक के आरम्भिक अध्यायों को पढ़ा जाता है। उत्पत्ति और इतिहास एवं उत्पत्ति और विज्ञान के ये अनुच्छेद दिखाते हैं कि यह कहना क्यों सही है कि इन अध्यायों का अभिप्राय इतिहास बताना है और ये एक ऐसी विश्व दार्शनिकता प्रस्तुत करते हैं जो विज्ञान को एक उचित बुनियाद देती है। इसके साथ ही, यह कहना सही नहीं है कि वे अपने सन्देश एक ऐसी शैली में देते हैं जिन्हें पढ़ने में आधुनिक पाठकगण अभ्यस्त हैं। उत्पत्ति को अच्छी तरह पढ़ने के लिए प्राचीन साहित्यिक शैलियों की कुछ समझ रखना लाभदायक होगा। यह निष्कर्ष निकालना जल्दबाजी होगी कि उत्पत्ति और विज्ञान या इतिहास की उचित समझ के बीच टकराव है (जिनके मानक निष्कर्ष भी हर समय संशोधित किए जा सकते हैं)। सरल शब्दों में कहें तो, उत्पत्ति का लेखक इस तथ्य का गुणगान करने के लिए लिखता है कि परमेश्वर ने जगत को रचा है, न कि उन बारीकियों को बताने के लिए कि उसने यह कैसे बनाया।

दृष्टिकोण की इस भिन्नता का अर्थ यह है कि उत्पत्ति के पहले अध्याय में सृष्टि की उत्पत्ति की प्रक्रिया को सम्बोधित नहीं किया गया है। बल्कि यह अध्याय केवल इतना ही बताता है कि परमेश्वर अपने मौखिक वचन के द्वारा ("फिर परमेश्वर ने कहा") आकाश और पृथ्वी को अस्तित्व में ले आया; और साथ ही यह अध्याय यह भी स्पष्ट करता है कि परमेश्वर ने समय और स्थान के अनुसार पृथ्वी का व्यवस्था-क्रम स्थापित किया, जो यह प्रकट करता है कि परमेश्वर ही ने मूल रूप में मनुष्यों की सृष्टि की और उन्हें पृथ्वी पर अपने प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त किया ताकि वे परमेश्वर की महिमा और समस्त सृष्टि के लाभ के लिए पृथ्वी पर शासन करें। जितना अधिक वैज्ञानिक परमेश्वर को सब वस्तुओं का सृष्टिकर्ता मानने से इनकार करते रहेंगे, उतना अधिक ऐसे वैज्ञानिक-कार्य और बाइबल दोनों ही की बुनियाद तथा निष्कर्षों के बीच एक मूलभूत संघर्ष होता रहेगा। साथ ही, जब विज्ञान परमेश्वर के सृजे संसार की समझ और वर्णन पर अपना लक्ष्य केन्द्रित करता है, तब बाइबल और वैज्ञानिक-कार्य के बीच कोई टकराव नहीं रहता। उत्पत्ति का लेखक किस बात को बताना चाहता है, उस दृष्टि से उसे समझने पर विज्ञान और साथ ही साथ बाइबल का एक मूल्यवान एवं वैध स्थान है। परन्तु ईश्वरीय प्रकाशन के रूप में उत्पत्ति की पुस्तक उस ज्ञान को उपलब्ध कराती है जिसे मानवीय जाँच पड़ताल के द्वारा नहीं खोजा जा सकता। यदि ऐसा नहीं होता, तो उत्पत्ति की पुस्तक को बाइबल का हिस्सा बनने की आवश्यकता नहीं होती।

इस प्रकार, आधुनिक पाठक उत्पत्ति को सर्वोत्तम रूप में तब ग्रहण करता है जब वह इस पुस्तक के लेखन में मूसा के अपने उद्देश्यों के साथ सहयोग करता है। यह सृष्टि, पाप में पतन और छुटकारे के भव्य

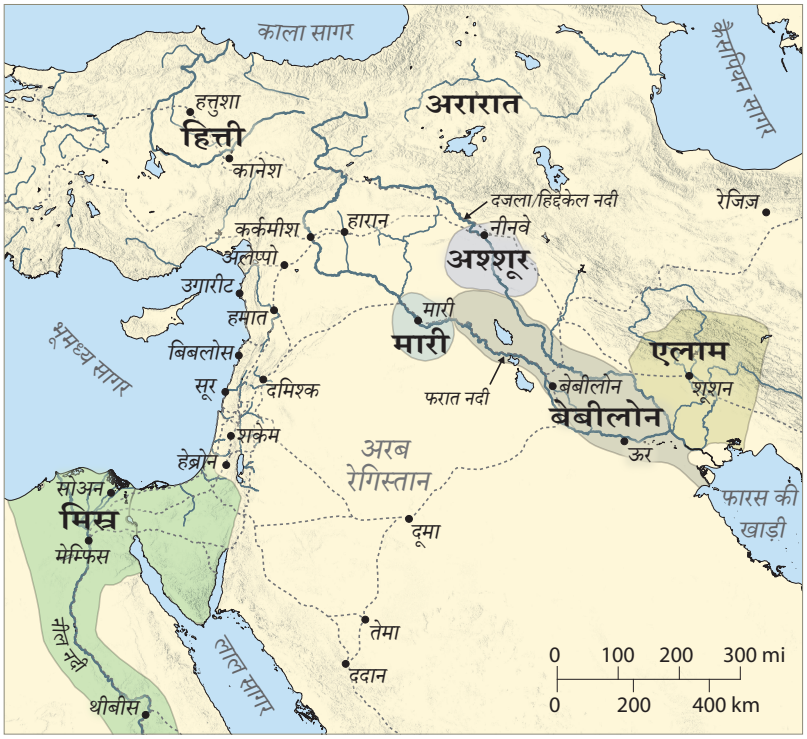

उत्पत्ति के समय निकटपूर्व

लगभग 2000 ई.पू.

उत्पत्ति की पुस्तक प्राचीन निकटपूर्व की घटनाओं का वर्णन मानव-सभ्यता के आरम्भ से लेकर मिस्र में याकूब (इस्राएल) के कुटुम्ब के स्थानान्तर तक करती है। उत्पत्ति की कहानियाँ संसार के कुछ सबसे पुराने राष्ट्रों में जिनमें मिस्र, अश्शूर, बेबीलोन और एलाम शामिल हैं, घटित हुईं।

वृतान्तों का मुख्य पृष्ठ है—एक ऐसा वृतान्त जिसने यीशु के पुनरुत्थान में महिमामय उत्कर्ष प्राप्त किया है जो उससे भी अधिक महिमामय अन्तिम परिणति का बयाना है। यह कहानी एक अच्छे जगत के विषय में जिसे एक अच्छे परमेश्वर ने बनाया और उस जगत में मनुष्य की भूमिका के विषय में है, एक ऐसी कहानी कि पाप का दाग किस प्रकार सभी बातों पर प्रभाव डालता है, और कैसे उन प्रभावों को पलट देने का परमेश्वर का उद्देश्य है। इस प्रकार एक व्यक्ति का देह में बिताया गया जीवन, एक व्यक्ति का समस्त मानवजाति से सम्बन्ध, एक व्यक्ति का सृजित संसार से सम्बन्ध तथा उसके प्रति दायित्व, एक व्यक्ति का परमेश्वर के अनुग्रह पर निर्भर होना, यह सब कुछ उस कहानी पर आधारित है जिसका आरम्भ उत्पत्ति की पुस्तक में हुआ। मसीही व्यवस्था में, जैसे सीनै की वाचा, नैतिक शुद्धता की आवश्यकता होती है जिसे देह में जिया जाता है; भौतिक आज्ञाएँ जिनके माध्यम से परमेश्वर अपना अनुग्रह दिखाता है, एक समाज जिससे विश्वासयोग्य व्यक्ति बंधे हैं—ये सभी सृष्टि के लिए परमेश्वर के मूल उद्देश्य की पुष्टि करते हैं। इसके अलावा, उत्पत्ति की पुस्तक परमेश्वर की अपनी सृष्टि अर्थात उसके प्रतिनिधि के साथ उसके व्यवहार का एक तंत्र देती है: आदम मनुष्यजाति और जगत का प्रतिनिधित्व करता है, और पाप में उसके पतन के परिणाम उन सबको प्रभावित करते हैं जिनका वह प्रतिनिधि था। यह मसीही समझ के लिए वह ढाँचा प्रदान करता है कि कैसे यीशु प्रतिनिधि बनने का कार्य करता है, जिसके परिणाम उन लोगों जिनका वह प्रतिनिधि है तथा समस्त सृष्टि, दोनों के लिए होंगे।

साहित्यिक विशेषताएँ

जैसे कि पहले ही चर्चा की जा चुकी है, उत्पत्ति इतिहास की एक पुस्तक है जिसमें इतिहास का वर्णन विभिन्न साहित्यिक स्वरूपों में है।

उत्पत्ति की पुस्तक विभिन्न स्वरूपों से बना एक संग्रह है। किन्तु यह अधिकांश संग्रहों की अपेक्षा एक निहायत ही एकीकृत संग्रह है, क्योंकि इसकी समस्त विषयवस्तु रचना-पद्धति की दृष्टि से ऐतिहासिक वृतान्त है, परन्तु फिर भी इसमें निहित इतिहास का संकलन उस प्रकार का नहीं है जैसा कि आम इतिहास की पुस्तकों में होता है जिससे आधुनिक पाठक सुपरिचित हैं। बल्कि, उत्पत्ति की पुस्तक मूल रूप में ऐसा संग्रह है जिसे नायकों की कहानियाँ कहा जा सकता है—क्रमानुसार घटनाओं का वृतान्त जो एक मुख्य किरदार पर केन्द्रित है जिसके प्रति पाठक संवेदनशील हो जाते हैं, और बीच-बीच में वंशावलियाँ बिखरी हैं। पहले तीन अध्याय उस साहित्य-प्रकार में आते हैं जिसे प्रारम्भों के वृतान्त के नाम से जाना जाता है। उत्पत्ति की पुस्तक की विशेषताएँ महाकाव्य की शैली से समरूप भी हैं क्योंकि यह कहानी एक वैश्विक इतिहास (अध्याय 1-11) तथा इस्राएल राष्ट्र के उद्गमों का वृतान्त है (अध्याय 12-50)।

उत्पत्ति की पुस्तक को एक साहित्यिक दृष्टिकोण से पढ़ने के लिए आवश्यक है कि पाठक साहित्यिक "नायक" की हाल ही में मान्य की गई व्याख्या के विषय में सही सोच रखें। इस दृष्टिकोण के तीन प्रमुख सिद्धान्त हैं: (1) वास्तविक जीवन नायक के लिए विषय-वस्तु का प्रयोजन करता है, परन्तु नायक की छवि हमेशा ही उस व्यक्ति के बारे में बहुत सी जानकारियों से प्राप्त होने वाले निष्कर्षों के चयन और विश्लेषण से निर्धारित होती है; (2) संस्कृतियाँ अपने आदर्श, मूल्यों और सद्गुणों को विधिबद्ध करने के लिए इन नायकों का गुणगान करती हैं; और (3) साहित्य के नायक उन्हें उत्पन्न करने वाली संस्कृति के प्रतिनिधि हैं, और एक दृष्टि से वे विश्वव्यापी लोगों के प्रतिनिधि हैं। इन

कहानियों के नायक हमेशा ही "पराक्रमी" नहीं होते हैं: वे साधारण मनुष्य हैं जो कहानी में ध्यानाकर्षित करने वाले मुख्य पात्र होते हैं; उनके कार्य या तो साहस भरे या कायरतापूर्ण, प्रशंसनीय या बुनियादी या (अकसर अधिकांश रूप में) इन सभी लक्षणों के जटिल सम्मिश्रण होते हैं। जैसे-जैसे वृतान्त आगे बढ़ता है, पाठक *आकस्मिक घटनाओं* के कारण प्रभावित हो जाते हैं—अर्थात घटना क्रमों का अन्त एक अलग ढंग से भी हो सकता था, और शायद अलग ढंग से होना भी चाहिए था। परमेश्वर की उसके लोगों के लिए प्रयोजनात्मक देखभाल उनकी अपूर्णताओं का उपयोग करते हुए उनके लिए परमेश्वर के उद्देश्यों को प्राप्त करती है। तब मूल श्रोतागण अपनी स्वयं की परिस्थितियों में परमेश्वर के उद्देश्यों को विस्तार से संलग्न पाते हैं, और इस प्रकार अपने जीवनों को परमेश्वर की ओर से एक उपहार के रूप में अपनाना सीखते हैं, जिन्हें परमेश्वर के दिशा निर्देश के अनुसार व्यतीत किया जाना चाहिए। एक उदाहरण है जिसमें अब्राहम का सेवक इसहाक के लिए पत्नी खोजता है (अध्याय 24)। ये सभी घटनाएँ एक भिन्न दिशा में भी मुड़ सकती थीं, और तब सम्भवतः इसहाक और रिबका का कभी विवाह नहीं होता—24:3-8 के वार्तालाप के अनुसार यह भी सम्भव था कि इसहाक कभी विवाह नहीं करता, और तब अब्राहम को दी गई प्रतिज्ञाओं का क्या होता? परन्तु परमेश्वर ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की (यह मत सोचिए कि सेवक ने जो किया वह सब कुछ सही था), और प्रथम पाठक वहाँ कहानी में जो कुछ हुआ उसके अनुसार विचार करके यह जान पाए कि वे स्वयं भी परमेश्वर की देखरेख के अधीन हैं। आधुनिक मसीही पाठक भी समान रूप में इस कहानी के वारिस और लाभार्थी हैं।

साहित्यिक एकीकरण के अभिप्रायों में ये बातें शामिल हैं: (1) परमेश्वर का चरित्र वर्णन और उसके लोगों के साथ उसके व्यवहार की कहानी। (2) मानवजाति की पापमयता और उसमें निहित व्यक्ति विशेष। (3) मानवजाति की पथभ्रष्टता के बावजूद, अपने लिए एक जाति को छुड़ाने की परमेश्वर की योजना का खुलासा करने वाली कहानी। (4) एक स्थिर शैली के रूप में "नायक की पराक्रमी गाथा।" (5) चरित्र, चरित्र, चरित्र: जब कोई व्यक्ति उत्पत्ति की पुस्तक पढ़ता है, तब वह अविस्मरणीय चरित्रों और उनकी कहानियों, तथा उनकी बुद्धिमत्ता और मूर्खताओं से सीखने योग्य पाठों का सामना करने के लिए लगातार आकर्षित होता जाता है।

रूपरेखा

I. आदिकालीन इतिहास (1:1-11:26)
  क. परमेश्वर के द्वारा आकाश एवं पृथ्वी की उत्पत्ति तथा उनका व्यवस्था-क्रम करना (1:1-2:3)
  ख. पृथ्वी के सबसे आरम्भिक लोग (2:4-4:26)
    1. अदन के पवित्र स्थान में पुरुष एवं स्त्री (2:4-25)
    2. दम्पति परमेश्वर के विरुद्ध बलवा करता है (3:1-24)
    3. आदम और हव्वा के पुत्र (4:1-26)
  ग. आदम के वंशज (5:1-6:8)
    1. आदम से नूह तक वंशावली (5:1-32)
    2. मानवजाति की दुष्टता (6:1-8)
  घ. नूह के वंशज (6:9-9:29)
    1. नूह और जल-प्रलय (6:9-9:19)
    2. कनान को शाप देना (9:20-29)
  ड़. नूह के पुत्रों के वंशज (10:1-11:9)
    1. कुल, भाषाएँ, देश-देश और जातियाँ (10:1-32)
    2. बाबेल की मीनार (11:1-9)
  च. शेम के वंशज (11:10-26)
II. पूर्वजों का इतिहास (11:27-50:26)
  क. तेरह के वंशज (11:27-25:18)
    1. तेरह के परिवार का संक्षिप्त परिचय (11:27-32)
    2. अब्राम का कनान को देशान्तर (12:1-9)
    3. मिस्र में अब्राम (12:10-20)
    4. अब्राम और लूत का अलग होना (13:1-18)
    5. अब्राम का लूत को छुड़ाना (14:1-24)
    6. अब्राम के साथ परमेश्वर की वाचा (15:1-21)
    7. इश्माएल का जन्म (16:1-16)
    8. ख़तने की वाचा (17:1-27)
    9. सदोम का विनाश (18:1-19:29)
    10. लूत का अपनी पुत्रियों से सम्बन्ध (19:30-38)
    11. अबीमेलेक द्वारा सारा को अपने हरम में ले जाना (20:1-18)

12. इसहाक का जन्म (21:1-21)
13. अबीमेलेक की अब्राहम के साथ वाचा (21:22-34)
14. अब्राहम की परीक्षा (22:1-19)
15. नाहोर की सन्तानें (22:20-24)
16. सारा की मृत्यु और दफनाया जाना (23:1-20)
17. इसहाक के लिए पत्नी (24:1-67)
18. अब्राहम की मृत्यु (25:1-11)
19. इश्माएल की वंशावली (25:12-18)

ख. इसहाक के वंशज (25:19-37:1)
1. एसाव और याकूब का जन्म (25:19-26)
2. एसाव अपना पहलौठे का अधिकार बेच देता है (25:27-34)
3. गरार में इसहाक (26:1-35)
4. इसहाक का याकूब को आशीष देना (27:1-45)
5. याकूब को अपने लिए पत्नी की तलाश में भेजा जाता है (27:46-28:9)
6. बेत-एल में याकूब (28:10-22)
7. याकूब की राहेल और लाबान से भेंट (29:1-14)
8. याकूब का लिआ और राहेल से विवाह (29:15-30)
9. याकूब की सन्तानें (29:31-30:24)
10. याकूब की कनान देश लौटने की तैयारी (30:25-31:18)
11. गिलाद में लाबान का याकूब पर आरोप (31:19-55)
12. याकूब की एसाव से फिर से भेंट करने की तैयारी (32:1-21)
13. पनीएल में याकूब का परमेश्वर से सामना (32:22-32)
14. याकूब का एसाव से मेलमिलाप (33:1-20)
15. दीना का बलात्कार (34:1-31)
16. याकूब की आगे हेब्रोन की ओर यात्रा (35:1-29)
17. एदोम में एसाव के वंशज (36:1-37:1)

ग. याकूब के वंशज (37:2-50:26)
1. यूसुफ का दासत्व के लिए बेचा जाना (37:2-36)
2. यहूदा और तामार (38:1-30)
3. मिस्र में यूसुफ (39:1-23)
4. यूसुफ और राजा के कैदी (40:1-23)
5. यूसुफ का फिरौन के स्वप्नों का अर्थ बताना (41:1-57)
6. यूसुफ के भाइयों की मिस्र की प्रथम यात्रा (42:1-38)
7. यूसुफ के भाइयों का मिस्र को लौटना (43:1-34)
8. बिन्यामीन पर चोरी का आरोप लगाया जाना (44:1-34)
9. यूसुफ का अपनी पहचान प्रकट करना (45:1-28)
10. याकूब के परिवार का मिस्र में स्थानान्तरण (46:1-27)
11. याकूब के परिवार का मिस्र में जा बसना (46:28-47:12)
12. यूसुफ का मिस्र में आए अकाल पर निरीक्षण करना (47:13-26)
13. याकूब का कनान में दफनाए जाने का आग्रह (47:27-31)
14. याकूब का यूसुफ, एप्रैम और मनश्शे को आशीष देना (48:1-22)
15. याकूब का अपने बारह पुत्रों को आशीष देना (49:1-28)
16. याकूब की मृत्यु और दफनाया जाना (49:29-50:14)
17. यूसुफ का अपने भाइयों को आश्वासन देना (50:15-21)
18. यूसुफ की मृत्यु (50:22-26)

उत्पत्ति

अध्याय 1
1[a]अय्यू. 38:4-7; भज. 33:6; 136:5; यशा. 42:5; 45:18; यूह. 1:1-3; प्रेरि. 14:15; 17:24; कुलु. 1:16, 17; इब्रा. 1:10; 11:3;

सृष्टि का आरम्भ

1 [a]आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की। [2]पृथ्वी [b]बेडौल और वीरान थी, और अथाह जल की सतह पर अन्धियारा था, और परमेश्वर का आत्मा जल की सतह पर मण्डराता था।

प्रका. 4:11 2[b]यिर्म. 4:23

1:1-11:26 *आदिकालीन इतिहास।* उत्पत्ति की पुस्तक के प्रथम 11 अध्याय आगामी शेष अध्यायों से भिन्न हैं। अध्या. 12-50 एक मुख्य परिवार के लक्षणीय रूप में विस्तृत वर्णन करने पर केन्द्रित है, जबकि अध्या. 1-11 को अब्राहम से पहले के विश्व के एक सर्वेक्षण के रूप में वर्णित किया जा सकता है। ये आरम्भिक अध्याय न केवल अध्या. 12 के बाद के अध्यायों की विषयवस्तु से भिन्न हैं, वरन् इसलिए भी भिन्न हैं क्योंकि पूर्वजों के विवरणों की अन्य साहित्यों में वास्तविक सादृश्यता या साम्य नहीं है। तथापि, पूर्वजों के विवरणों के विपरीत, बाइबल के बाहर अन्य प्राचीन विवरणों का अस्तित्व है जिनमें सृष्टि की उत्पत्ति किए जाने और जल-प्रलय के आने का वर्णन है। फिर भी, ऐसी कहानियों का अस्तित्व किसी भी रूप में उत्पत्ति की पुस्तक में ईश्वरीय अधिकार और ईश्वरीय प्रेरणा को चुनौती नहीं देता। वास्तव में बाइबल से बाहर की ये कहानियाँ, बाइबल में दिए गए वृतान्तों से सर्वथा विपरीत हैं, और इस कारण यह पाठकगण को बाइबल में दिए गए सृष्टि और जल-प्रलय के वृतान्तों के अद्वितीय गुण और चरित्र की सराहना करने हेतु सहायता करती हैं। अन्य प्राचीन साहित्य की परम्पराओं में सृष्टि का निर्माण एक बड़ा संघर्ष है जिसमें अकसर बहुत से देवी-देवतागण आपस में संघर्षरत हैं। जल-प्रलय इसलिए भेजा गया था क्योंकि देवतागण मनुष्यों द्वारा उत्पन्न शोर-शराबे को सह नहीं सके, फिर भी वे उस पर नियंत्रण नहीं पा सके। इन कहानियों के द्वारा प्राचीन जगत के लोग उन देवी-देवताओं के विषय में, जिनकी वे पूजा करते थे, अपनी परम्पराएँ और जीवन जीने का तरीका सीखते थे जिनका उन्हें पालन करना होता था। सृष्टि और जल-प्रलय की बेबीलोन की कहानियों की संरचना यह दर्शाने के लिए थी कि बेबीलोन ही धार्मिक-विश्व का केन्द्र था और उसकी सभ्यता मनुष्यों द्वारा अर्जित सर्वोच्च सभ्यता थी।

उत्पत्ति के पढ़ने पर पाठक यह समझ सकता है कि इसकी संरचना ऐसे भ्रामक विचारों का खण्डन करने के लिए की गई है। केवल एक ही परमेश्वर है जिसका वचन सर्वशक्तिमान है। उसे मात्र शब्द बोलने की आवश्यकता है और जगत अस्तित्व में आता है। सूर्य और चंद्र अपने-अपने अधिकार में ईश्वर नहीं हैं, बल्कि एकमात्र परमेश्वर द्वारा सृजे गए हैं। यह परमेश्वर मनुष्यों के चढ़ावे पर निर्भर नहीं है जैसा बाबेल के लोग मानते थे कि देवता उनकी बलियों पर निर्भर थे, बल्कि बाइबल का परमेश्वर मनुष्यों के लिए भोजन का प्रयोजन करता है। यह ईश्वरीय क्रोध नहीं परन्तु मानवीय पाप है जिसने जल-प्रलय को उकसाया। बाबेल की मीनार आकाश को छूने के बजाए इस बात का एक स्मारक बन गयी कि मनुष्यों का गर्व परमेश्वर को न छू सकता है, और न चतुराई से प्रभावित कर सकता है।

ये सिद्धान्त जो उत्पत्ति 1-11 अध्यायों में अति स्पष्टता से उभर कर आते हैं, वे सत्य हैं जो शेष पवित्रशास्त्र में प्रवाहित होते हैं। परमेश्वर की एकता बाइबल-सम्मत ईश्वर-विज्ञान में वैसे ही मूलभूत है, जैसे उसकी सर्वशक्तिमान सामर्थ, मनुष्यों के प्रति उसकी देखभाल, और पाप पर उसका दण्ड मूलभूत है। यह भले ही हमेशा स्वाभाविक रूप में समझ न आए कि किस प्रकार ये अध्याय भूगोल और पुरातत्व-शास्त्र से सम्बन्धित हैं, परन्तु उनका ईश्वर-विज्ञान का सन्देश अति स्पष्ट है। उन्हें उनके नियत अर्थ को ध्यान में रखते हुए पढ़ा जाए तो वे शेष पवित्रशास्त्र की मूलभूत पूर्व मान्यताएँ प्रदान करते हैं। इन अध्यायों को चश्मे के समान उपयोग करना चाहिए ताकि पाठक उन विचार बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करें जो लेखक कहना चाहता है और शेष बाइबल को उनके प्रकाश में देखें।

1:1-2:3 *परमेश्वर के द्वारा आकाश एवं पृथ्वी की उत्पत्ति तथा उनका व्यवस्था-क्रम करना।* उत्पत्ति की पुस्तक एक प्रतापी वर्णन के साथ आरम्भ होती है कि कैसे परमेश्वर ने सबसे पहले आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की और फिर कैसे उसने पृथ्वी का व्यवस्था-क्रम किया ताकि वह उसके निवास का स्थान बन सके। सात भागों में संरचित, जिनमें से प्रत्येक की पहचान नियत वाक्यांशों के उपयोग से होती है, यह समस्त कड़ी एक सर्वसामर्थी और ज्ञान से परे परमेश्वर की तस्वीर दिखाती है जो सभी वस्तुओं को उनके निर्धारित स्थान में सिद्ध कौशल के साथ रखता है जो उसके द्वारा रचित भव्य संरचना के अनुकूल हैं। बल मुख्यतः इस बात पर है कि परमेश्वर कैसे सब बातों का क्रम या उनकी संरचना करता है। इस विवरण की संरचना इस प्रकार है: पृष्ठभूमि तैयार करने के बाद (1:1-2) लेखक कार्य के छः दिनों (1:3-31) और सातवाँ दिन, अर्थात परमेश्वर के विश्राम दिन का वर्णन करता है (2:1-3)। कार्य के सभी छः दिनों में तरीका एक समान ही है: इसका आरम्भ "फिर परमेश्वर ने कहा" से होता है और अन्त "तब संध्या हुई फिर सवेरा हुआ और दिन हो गया" से होता है। परमेश्वर सब वस्तुओं का सृष्टिकर्ता है यह उद्घोषणा करने के पश्चात (1:1) यह बताने के बजाए कि आरम्भ में पृथ्वी की सृष्टि कैसे की गई (1:1), शेष उत्पत्ति 1 का केन्द्र-बिन्दु (1:3 से आरम्भ होकर) मुख्य रूप से इस बात पर है कि परमेश्वर अपने वचन के द्वारा वस्तुओं को अस्तित्व में लाता है और सृजी गई वस्तुओं को क्रमबद्ध करता है ("जल एक स्थान में इकट्ठा हो जाए," 1:9)। विभिन्न लक्षण इसी बात को दर्शाते हैं। उदाहरण के लिए, तीसरे दिन वनस्पति का उल्लेख है, जो कि स्पष्ट रूप से चौथे दिन सूर्य की सृष्टि करने से पहले है। जिन पाठकों को चिन्ता है कि इस वृतान्त को आधुनिक विज्ञान के दृष्टिकोण में कैसे समझे उन्हें परिचय: उत्पत्ति और विज्ञान इस भाग को पढ़ना चाहिये। प्राचीन निकट-पूर्व के सन्दर्भ

पहला दिनः उजियाला

3[c]2 कुरि. 4:6

3तब परमेश्वर ने कहा, [c]"उजियाला हो," और उजियाला हो गया। 4परमेश्वर ने देखा कि उजियाला अच्छा है, और
परमेश्वर ने उजियाले को अन्धियारे से अलग किया। 5और परमेश्वर ने उजियाले को दिन तथा अन्धियारे को रात कहा।
तब संध्या हुई, फिर सवेरा हुआ। इस प्रकार पहला दिन हो गया।

में देखने पर, उत्पत्ति 1 कहता है कि परमेश्वर ही ने सब कुछ सृजा, परन्तु यह इस बात का वृतान्त भी है कि परमेश्वर ने सृष्टि को उसके जटिल क्रम में किस प्रकार संरचित किया। पाठकों को प्रथम तीन दिनों में दिन, रात, आकाश, पृथ्वी, समुद्र जैसी वस्तुओं से—और केवल इन ही वस्तुओं से परिचित कराया जाता है, जिनके नाम विशेष रूप में परमेश्वर ने रखे। दिन 4-6 में तीन विभिन्न क्षेत्रों को आबादी से भरा गया: आकाश में ज्योतियाँ और पक्षी; समुद्र में मछलियाँ और अन्य झुण्ड बनाकर रहने वाले प्राणी; और पृथ्वी में पशु (चौपाये) और अन्य रेंगने वाले जन्तु। अन्त में परमेश्वर ने अपने राजप्रतिनिधि के रूप में मानवजाति को नियुक्त करके उन्हें अधिकार दिया कि वे इन सभी जीवित प्राणियों पर शासन करें। उत्पत्ति 1 में अधिकार की एक याजकीय धर्म-सत्ता स्थापित की गई है। मानवजाति को परमेश्वर के लिए प्रतिनिधि बनकर अन्य सभी प्राणियों पर शासन करने के लिए परमेश्वर की ओर से अधिकृत किया गया है, इसका परम उद्देश्य यह था कि सम्पूर्ण पृथ्वी परमेश्वर का मन्दिर अर्थात उसकी उपस्थिति का स्थान बने और उसकी महिमा का प्रदर्शन करे।

1:1 आदि में। आरम्भ का यह वचन *सारांश* के रूप में लिया जा सकता है जो सम्पूर्ण वृतान्त का परिचय देता है; या फिर इसे *प्रथम घटना* के रूप में पढ़ा जा सकता है, आकाश और पृथ्वी का आरम्भ (प्रथम दिन से पहले कभी) जिसमें पदार्थ, अन्तरिक्ष और समय की उत्पत्ति निहित हैं। इस दूसरे दृष्टिकोण (आकाश और पृथ्वी की उत्पत्ति) की पुष्टि नया नियम के लेखकों के इस दृढ़ कथन के द्वारा की गई है कि सृष्टि की उत्पत्ति "कुछ नहीं" से की गई थी (इब्रा. 11:3; प्रका. 4:11)। **परमेश्वर ने . . . सृष्टि की।** यद्यपि "परमेश्वर" के लिए प्रयुक्त इब्रानी शब्द *एलोहीम* बहुवचन में है (सम्भवतः महानता दर्शाने के लिये) फिर भी क्रिया पद "सृष्टि की" एक वचन में है जो संकेत देता है कि परमेश्वर को 'एक ही' समझा गया है। उत्पत्ति की पुस्तक अपने दृष्टिकोण में लगातार "एक ईश्वरवादी" है, और यह सृष्टि के विषय में प्राचीन निकट-पूर्व के अन्य विवरणों से सर्वथा विपरीत है। केवल एक ही परमेश्वर है। पुराने नियम में इब्रानी क्रिया पद *बारा,* "सृष्टि की" का उपयोग हमेशा ही कर्ता के रूप में परमेश्वर के साथ किया जाता है; हालाँकि इसका अभिप्राय हमेशा ही कुछ नहीं में से सृष्टि करना नहीं है, तो भी यह परमेश्वर की सम्प्रभुता और सामर्थ पर अवश्य बल देता है। यहाँ **आकाश और पृथ्वी** का अभिप्राय "सब कुछ" से है। इस प्रकार, इसका अर्थ है कि "आदि में" यह वाक्यांश सभी बातों के आरम्भ का उल्लेख करता है। यह वचन संकेत करता है कि परमेश्वर ने विश्व की प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति की, जो इस बात की पुष्टि करता है कि उसने वास्तव में *कुछ नहीं* (लैटिन भाषा में "एक्स-निहिलो" अर्थात कुछ नहीं) से सब कुछ सृजा। बाइबल के इन आरम्भिक शब्दों का नियोजन इस सत्य को स्थापित करने के लिए है कि जो कुछ अस्तित्व में है, परमेश्वर ही अपनी अगम्य बुद्धि, सम्प्रभु सामर्थ और महिमा के साथ उन सब वस्तुओं का सृष्टिकर्ता है।

1:2 पृथ्वी का यह आरम्भिक वर्णन कि वह **"बेडौल और वीरान थी"** जो कि पुराने नियम में केवल एक बार यिर्मयाह 4:23 में दोहराया गया वाक्यांश है, व्यक्त करता है कि उसमें कोई क्रम तथा निहित वस्तु नहीं थी। **अथाह जल की सतह पर अन्धियारा था** ज्योति की अनुपस्थिति को दिखाता है। पृथ्वी की यह आरम्भिक दशा परमेश्वर की सृजनशील गतिविधि के द्वारा रूपान्तरित की जाएगी: **परमेश्वर का आत्मा जल की सतह पर मण्डराता था।** यह टिप्पणी एक आशा का संज्ञान देती है कि कुछ होने वाला है। यह मानने का कोई कारण नहीं है कि उत्पत्ति 1:1 और 1:2 के बीच एक लम्बा अन्तराल था जिसमें पृथ्वी बेडौल और सुनसान हो गई। विद्वान आलोचक विवाद करते हैं कि शब्द "अथाह" (इब्रा. *टेहोम*) मेसोपोटामिया के पौराणिक शास्त्र एनुमा एलिश में दिए गए सृष्टि के विवरण का अंश है। विश्व को सुव्यवस्थित करने के लिए मरदुक को अराजकता की देवी तियामत को भी पराजित करना अवश्य था। ये विद्वान मानते हैं कि इब्रानी ईश्वर को "अथाह" के रूप में जानी जाने वाली अराजकता की देवी तियामत पर विजय प्राप्त करनी थी (*टेहोम* और "तियामत" इन दो शब्दों में समानता पर ध्यान दें)। हालाँकि भाषा सम्बन्धित बहुत से कारण हैं कि इन दोनों शब्दों में सीधी पहचान पर सन्देह किया जाए। किसी भी स्थिति में उत्पत्ति या शेष बाइबल में कहीं भी परमेश्वर और 'अथाह' जल के बीच कोई टकराव नहीं है क्योंकि अथाह जल परमेश्वर की आज्ञा पूरी करता है (तुल. 7:11; 8:2; भज. 33:7, 104:6)।

1:3-5 तब परमेश्वर ने कहा। अध्याय 1 में परमेश्वर की परम सामर्थ इस तथ्य द्वारा व्यक्त की गई है कि उसके केवल बोलने से वस्तुएँ अस्तित्व में आ जाती हैं। इस अध्याय के प्रत्येक नए प्रभाग का परिचय परमेश्वर के द्वारा बोलने से दिया गया है। यह अध्याय 1 में सृष्टि के 10 शब्दों में प्रथम है। **उजियाला हो।** उजियाला परमेश्वर के सृष्टि के उन कार्यों में प्रथम कार्य है जिन्हें परमेश्वर बोलकर अस्तित्व में ले आया। **उजियाला अच्छा है** (व. 4)। वह प्रत्येक वस्तु जिसे परमेश्वर अस्तित्व में ले आया, अच्छी है। यह इस सम्पूर्ण अध्याय में दोहराया गया महत्त्वपूर्ण राग है (व. 10, 12, 18, 21, 25, 31 देखें)। **परमेश्वर ने उजियाले को दिन . . . कहा** (व. 5)। वचन 5 में केन्द्रीय विचार यह है कि परमेश्वर ने साप्ताहिक चक्र में समय का व्यवस्था-क्रम कैसे किया; इस प्रकार "उजियाला हो" इस वाक्यांश का संकेत एक नए दिन के उदय की ओर हो सकता है। परमेश्वर को छः दिन काम करते और सब्त के दिन विश्राम करते दिखाया गया है, जो कि मानवीय गतिविधियों के लिए एक मानक है। चौथा दिन इस विचार को और भी अधिक विकसित करता है: ज्योतियों को आकाश में रखा गया ताकि वे चिन्हों और नियत समयों को दर्शाए, तथा दिनों, वर्षों और बड़े पर्वों, जैसे फसह का पर्व, के समय को बताने का उद्देश्य पूरा करे। संरचित हो रहे समय के इस संज्ञान पर इस सम्पूर्ण अध्याय में और भी बल दिया जाता है जब परमेश्वर द्वारा व्यवस्था-क्रम किए जाने और भर देने के प्रत्येक चरण को संध्या और सवेरा के द्वारा विशेष दिनों में बाँटा गया है। **तब संध्या हुई, फिर सवेरा हुआ। इस प्रकार पहला दिन हो गया।** यह क्रम—संध्या, *फिर* सवेरा—पाठक की वृतान्त के प्रवाह में जाने में सहायता करता है: कार्य के दिन के बाद (व. 3-5अ) संध्या हुई, फिर सवेरा हुआ जिसका आशय यह है कि बीच में रात का समय भी है (काम करने वाले का दैनिक विश्राम)। इस प्रकार पाठक को अगले काम के दिन के उदय के लिए तैयार किया जाता है। ऐसे ही समान वाक्यांश अध्याय

स्थान	निवासी
1. उजियाला और अन्धियारा	4. दिन और रात की ज्योतियाँ
2. समुद्र और आकाश	5. मछलियाँ और पक्षी
3. उपजाऊ भूमि	6. पृथ्वी के जाति-जाति के जीव (मनुष्यजाति सहित)
7. विश्राम और आनन्द	

6 [d]अय्यू. 37:18; भज. 136:5; यिर्म. 10:12; 51:15
7 [e]भज. 148:4 [f]नीति. 8:27-29
9 [g]अय्यू. 38:8-11; भज. 33:7; 136:6; यिर्म. 5:22; 2 पत.3:5
11 [h]भज. 104:14
14 [i]यिर्म. 10:2; यहे.3 2:7,8; योए. 2:30,31; 3:15; मत्ती. 24:29; लूका. 21:25 [j]भज. 104:19
16 [k]व्यव. 4:19; भज. 136:7-9

दूसरा दिन: आकाश

6फिर परमेश्वर ने कहा, [d]"जल के बीच एक अन्तर[1] हो, वह जल को जल से अलग करे।" 7तब परमेश्वर ने अन्तर स्थापित करके, अन्तर के नीचे के जल को अन्तर के [e]ऊपर के जल से [f]अलग किया, और ऐसा ही हो गया। 8और परमेश्वर ने उस अन्तर को आकाश कहा। तब संध्या हुई, फिर सवेरा हुआ। इस प्रकार दूसरा दिन हो गया।

तीसरा दिन: पृथ्वी और वनस्पति

9फिर परमेश्वर ने कहा, [g]"आकाश के नीचे का जल एक स्थान में इकट्ठा हो जाए और सूखी भूमि दिखाई दे," और ऐसा ही हो गया। 10परमेश्वर ने सूखी भूमि को पृथ्वी कहा, तथा जो जल इकट्ठा हुआ था उसको उसने समुद्र कहा। तब परमेश्वर ने देखा कि अच्छा है। 11फिर परमेश्वर ने कहा, [h]"पृथ्वी वनस्पति उत्पन्न करे, अर्थात पृथ्वी पर बीज वाले पौधे और अपनी अपनी जाति के अनुसार फल देने वाले वृक्ष उगें, जिनके बीज उन्हीं में हों।" और ऐसा ही हो गया। 12और पृथ्वी से वनस्पति, अर्थात अपनी अपनी जाति के अनुसार बीज वाले पौधे और फलदायक वृक्ष उगे, जिनमें अपनी अपनी जाति के अनुसार बीज होते हैं। और परमेश्वर ने देखा कि अच्छा है। 13तब संध्या हुई, फिर सवेरा हुआ। इस प्रकार तीसरा दिन हो गया।

चौथा दिन: सूर्य, चन्द्रमा और तारागण

14फिर परमेश्वर ने कहा, "दिन को रात से अलग करने के लिए आकाश के अन्तर में ज्योतियां हों, और वे [i]चिह्नों, [j]नियत समयों, और दिनों तथा वर्षों के लिए हों। 15वे पृथ्वी पर प्रकाश देने के लिए आकाश के अन्तर में ज्योतियां ठहरें।" और ऐसा ही हो गया। 16तब परमेश्वर ने [k]दो बड़ी ज्योतियां बनाईं कि उन में से बड़ी ज्योति दिन पर प्रभुता करे और छोटी ज्योति रात्रि पर प्रभुता करे। उसने तारागण भी बनाए। 17परमेश्वर ने उन्हें आकाश के अन्तर में इसलिए रखा कि

[1]या *छत्र;* वचन 7, 8, 14, 15, 17, 20 भी

---

1 को काम करने के भिन्न-भिन्न छः दिनों में विभाजित करते हैं, जबकि 2:1-3 सातवाँ दिन लाता है, अर्थात परमेश्वर का सब्त। प्रथम 3 दिनों में परमेश्वर ने उस वातावरण की सृष्टि की जिसमें 4-6 दिन में सृजे जाने वाले प्राणी निवास करेंगे; इस प्रकार समुद्र और आकाश (दिन 2) पाँचवें दिन सृजी गई मछलियों (जलचरों) और पक्षियों (नभचरों) से भर जाते हैं (नीचे दिया गया चार्ट देखें)। उत्पत्ति के सरल पठन के द्वारा इन दिनों को परमेश्वर के जीवन के दिनों के रूप में वर्णित किया जाना चाहिए, परन्तु उसके दिन मनुष्यों के दिनों से किस प्रकार सम्बन्धित है यह निर्धारित करना अधिक कठिन है (तुल. भज. 90:4; 2 पत. 3:8)। कृपया अधिक जानकारी के लिए परिचय: उत्पत्ति और विज्ञान देखें।

1:6-8 जल। प्राचीन निकट पूर्व के सृष्टि से सम्बन्धित साहित्य में जल एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। उदाहरण के लिए मिस्र में सृजनकर्ता *साह* नामक ईश्वर पहले से ही विद्यमान जल (नून नाम ईश्वर के रूप में मानवीकरण) का उपयोग करके विश्व की सृष्टि करता है। यही बात मेसोपोटामिया के विश्वास में भी सत्य है: जलीय अराजकता के देवी देवताओं अपसु, तियामत और मुम्मू में से सृष्टि का निर्माण हुआ। बाइबल में दिया गया सृष्टि का विवरण ऐसे अन्धकारमय पौराणिक बहु-ईश्वरवाद के सर्वथा विपरीत है। बाइबल में दिए गए विवरण में सृष्टि के समय में जल कोई ईश्वर नहीं है, यह केवल एक वस्तु है जिसे परमेश्वर ने सृजा था, और यह एकमात्र सम्प्रभु सृजनहार के हाथ में मात्र एक पदार्थ है। जिस प्रकार ज्योति को अन्धकार से अलग किया गया, वैसे ही **अन्तर** स्थापित करने के लिए जल को जल से अलग किया गया (व. 6-7), जिसे परमेश्वर ने **आकाश** कहा (व. 8)। जैसा कि एच.एस.बी. के फुटनोट में एक वैकल्पिक शब्द "मण्डल" भी है, हिन्दी में एक अकेला शब्द प्राप्त करना कठिन है जो इब्रानी में प्रयुक्त शब्द *शमायीम* (आकाश एकवचन और बहुवचन भी है) का सटीक अर्थ अभिव्यक्त कर सके। इस सन्दर्भ में यह वह है जो मनुष्य अपने ऊपर देखते हैं, अर्थात वह परिक्षेत्र जिसमें आकाशीय ज्योतियाँ (व. 14-17) और पक्षी हैं (व. 20)।

1:9-13 दो अगले परिक्षेत्रों का संगठन परमेश्वर ने किया: **सूखी भूमि** जिससे **पृथ्वी** बनी और **इकट्ठा जल** जिससे **समुद्र** बना (व. 9-10)। ये वे अन्तिम वस्तुएँ हैं जिनके नाम स्वयं परमेश्वर ने रखे। उसके बाद परमेश्वर ने पृथ्वी को **वनस्पति** उत्पन्न करने की आज्ञा दी (व. 11-12)। यद्यपि वनस्पति का सृजन तीसरे दिन आवश्यक प्रतीत नहीं होता, पर फिर भी यह मानवजाति और अन्य प्राणियों के लिए भोजन के सम्बन्ध में परमेश्वर द्वारा बाद में वचन 29-30 में कहे गए शब्दों की प्रस्तावना है। दिन 1-3 में अलग-अलग स्थानों (आकाश, पृथ्वी, समुद्र) की सृष्टि जिसमें वनस्पति की सृष्टि शामिल है, दिन 4-6 में सृजे गए प्राणियों से भरे जाने की तैयारी है।

1:14-19 इस भाग का निकट सम्बन्ध पहले दिन में दिन और रात की व्यवस्था से है जिसमें उजियाले और अन्धियारे को अलग-अलग किया गया (व. 3-5)। यहाँ **ज्योतियों** की सृष्टि किए जाने पर बल दिया गया है जो समय निर्धारित करेंगी और साथ ही **पृथ्वी पर प्रकाश** भी देंगी (व. 15)। उन्हें **बड़ी ज्योति** और **छोटी ज्योति** कहकर (व. 16) यह वचन उन शब्दों का उपयोग नहीं करता जिन्हें बहुदेववादी लोग सूर्य और चन्द्रमा को देवता मानकर पुकारते हैं। अध्याय 1 इन बहुदेववादी विचारों को सोच-समझकर नष्ट कर देता है कि प्रकृति का नियंत्रण बहुत से देवी देवता मिलकर करते हैं (प्राचीन निकट पूर्व में अन्यजाति लोग प्रकृति के विभिन्न तत्वों को देवता बनाकर उनका व्यक्तिकरण करते थे, जैसे कि मिस्री कथाओं में सूर्य का *रा* और चन्द्रमा का *थॉथ* के रूप में व्यक्तिकरण किया गया है)। शब्द **बनाईं** (इब्रानी में *असाह*, व. 16) जैसा एच.एस.बी. के फुटनोट में दर्शाया गया है उसका सरल अर्थ है कि परमेश्वर ने उनकी "संरचना की" या उन पर "काम किया"; इसका अर्थ यह नहीं है कि वे पहले किसी और स्वरूप में अस्तित्व में थे। बल्कि, यहाँ बल इस बात पर है कि परमेश्वर ने अपने उद्देश्यों के अनुसार समय की गणना और प्रबन्ध के लिए सूर्य और चन्द्रमा को नियुक्त किया। इस प्रकार **चिन्हों** (व. 14) या "नियत समयों" (एच.एस.बी. फुटनोट देखें) और **दिनों और वर्षों** का परोक्ष सम्बन्ध सम्भवतः इब्रानी कैलेण्डर में आराधना पर्वों और धार्मिक समारोहों के नियत समयों और नमूनों से था (निर्ग. 13:10; 23:15)।

1:16 और तारागण भी बनाएं। परमेश्वर द्वारा सृजित अति विशाल अन्तरिक्ष (यशा. 40:25-26 पर टिप्पणी देखें) का उल्लेख यहाँ एक संक्षिप्त वाक्यांश में है, जो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो बाद में सोचकर लिखा गया है। उत्पत्ति 1 का मुख्य बल पृथ्वी पर है, शेष बाइबल का मुख्य

वे पृथ्वी पर प्रकाश दें, 18तथा [l]दिन और रात्रि पर प्रभुता करें, और उजियाले को अन्धियारे से अलग रखें। और परमेश्वर ने देखा कि अच्छा है। 19तब संध्या हुई, फिर सवेरा हुआ। इस प्रकार चौथा दिन हो गया।

पांचवां दिन: जल-जन्तु और पक्षी

20फिर परमेश्वर ने कहा, "जल झुण्ड के झुण्ड जीव-जन्तुओं से अत्यधिक भर जाए और पृथ्वी के ऊपर आकाश के विस्तार में पक्षी[1] उड़ें।" 21और [m]परमेश्वर ने विशालकाय समुद्री जल-जन्तुओं तथा प्रत्येक जीवित और तैरने-फिरने वाले जन्तु की सृष्टि की, जिनकी भिन्न भिन्न जातियों से जल बहुत ही भर गया, और इसी प्रकार हर एक जाति के उड़ने वाले पक्षियों की भी सृष्टि की, और परमेश्वर ने देखा कि अच्छा है। 22और परमेश्वर ने यह कह कर आशीष दी, [n]"फूलो-फलो और समुद्र के जल में भर जाओ, और पृथ्वी पर पक्षी बहुत ही बढ़ें।" 23तब संध्या हुई, फिर सवेरा हुआ। इस प्रकार पांचवां दिन हो गया।

छठवां दिन: जीव-जन्तु और मनुष्य

24फिर परमेश्वर ने कहा, "पृथ्वी हर एक जाति के जीवित प्राणी, अर्थात घरेलू पशु, रेंगने वाले जन्तु, और पृथ्वी के वन-पशु, उसकी अपनी जाति के अनुसार उत्पन्न करे।" और ऐसा ही हो गया। 25और परमेश्वर ने पृथ्वी के जाति जाति के वन-पशुओं, जाति जाति के घरेलू पशुओं, और भूमि पर रेंगने वाले जाति जाति के सब जन्तुओं को बनाया। और परमेश्वर ने देखा कि अच्छा है। 26फिर परमेश्वर ने कहा, [o]"हम मनुष्य[2] को अपने स्वरूप में, [p]अपनी समानता के अनुसार बनाएं। और [q]वे समुद्र की मछलियों और आकाश के पक्षियों पर तथा घरेलू पशुओं और सारी पृथ्वी और हर एक रेंगने वाले जन्तु पर जो पृथ्वी पर रेंगता है, प्रभुता करें।"

27 और परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप में सृजा।
अपने ही स्वरूप में परमेश्वर ने उनको सृजा।
उसने [r]नर और नारी करके उनकी सृष्टि की।

18 [l]यिर्म. 31:35
21 [m]भज. 104:25, 26
22 [n]अध्या. 8:17; 9:1
26 [o]अध्या. 3:22; 11:7; यशा. 6:8 [p]अध्या. 5:1;9:6; 1 कुरि. 11:7; इफि. 4:24; कुलु. 3:10; याकू. 3:9 [q]अध्या.9:2; भज. 8:6-8; याकू. 3:7
27 [r]अध्या. 2:18, 21-23; 5:2; मला. 2:15; मत्ती. 19:4; मर. 10:6

[1]या *उड़ने वाले जन्तु;* लैव्यव्यवस्था 11:19-20 देखें [2]*मनुष्य* के लिए इब्रानी शब्द (*आदम*) मानवजाति के लिए प्रयुक्त होने वाला एक सामान्य शब्द है और व्यक्तिवाचक नाम *आदम* बन जाता है

बल मनुष्य (पुरुष और स्त्री) पर है जो परमेश्वर की सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ है और उसके महान उद्धार का विषय है।

1:20-23 पहले ही **जल** तथा **आकाश के विस्तार** की सृष्टि किए जाने का वर्णन करने के बाद, यह भाग इस बात पर केन्द्रित है कि उन्हें विभिन्न प्रजातियों के समुचित प्राणियों से कैसे भरा गया। प्रजनन की क्षमता से युक्त जीवों के रूप में उन्हें परमेश्वर ने आशीष दी कि वे फलवन्त हों, और अपने-अपने क्षेत्रों को भर दें।

1:21 शब्द-प्रयोग **विशालकाय समुद्री जल-जन्तुओं** (इब्रा. *तैन्निन्*) विभिन्न सन्दर्भों में विशाल सर्पों, अजगरों और घड़ियालों, साथ ही साथ (यहाँ सम्भावित अर्थ में) व्हेल और शार्क का सूचक हो सकता है। कुछ का मानना है कि इसका सन्दर्भ लुप्त प्राणियों जैसे डायनासोर से भी हो सकता है। कनानी दन्तकथाओं में उर्वरा (या प्रजनन) के प्रमुख देवता बाल के शत्रु के रूप में एक विशालकाय अजगर का चित्रण किया गया है। उत्पत्ति प्रदर्शित करती है कि परमेश्वर ने विशालकाय जीव जन्तुओं की सृष्टि की, परन्तु वे परमेश्वर के विरुद्ध विद्रोह में नहीं हैं। वह सम्प्रभु है और विश्व का सृजन करने में वह किसी के साथ युद्ध में नहीं है।

1:24-31 यह किसी एक दिन का वर्णन करने वाला सबसे लम्बा खण्ड है, और संकेत करता है कि इस वृतान्त में छठवाँ दिन अति महत्त्वपूर्ण शिखर है। अन्तिम परिक्षेत्र जिसे भरा जाना है, वह सूखी भूमि या पृथ्वी है (जैसा इसका नाम व. 10 में दिया गया है)। इस भाग में सूखी भूमि पर रहने के लिए सृजे गए सभी जीवित प्राणियों और मनुष्यों के बीच विशेष महत्त्वपूर्ण अन्तर दर्शाया गया है। जबकि वचन 24-25 उन विभिन्न प्रजातियों के "जीवित प्राणियों" का वर्णन करते हैं जो पृथ्वी से उत्पन्न होने हैं, वचन 26-30 का सम्बन्ध मानवजाति को दिए विशेष दर्जे से है।

1:24-25 घरेलू पशु, रेंगने वाले जन्तु, और पृथ्वी के वन-पशु। ये संज्ञाएँ भूमि पर विचरण करने वाले पशुओं की तीन प्रमुख श्रेणियों को दर्शाती हैं, सम्भवत: इस श्रेणीकरण का आधार उन दिनों के खानाबदोश चरवाहों के अनुभव हैं: पालतू बनाये जाने योग्य झुण्ड के पशु (उदा., भेड़, बकरियां, गाय-बैल और सम्भवत: ऊँट और घोड़े भी); छोटे चौपाये (चूहे, घूस, छिपकली, और मकड़ियां); और बड़े एवं हिंसक वन-पशु (जैसे हिरण और सिंह)। यह सूची पूरी नहीं है और कुछ-कुछ पशुओं की श्रेणी निर्धारित करना कठिन काम है (जैसे पालतू बिल्ली)। आगे की जानकारी के लिए परिचय: उत्पत्ति और विज्ञान देखें।

1:26 हम मनुष्य को अपने स्वरूप में . . . बनाएं। यह वचन यहाँ उल्लिखित "हम" की स्पष्ट पहचान नहीं देता। कुछ ने संकेत दिया है कि शायद परमेश्वर अपने दरबार के उन सदस्यों से कह रहा था जिन्हें पुराने नियम के अन्य स्थलों में "परमेश्वर के पुत्र" कहा गया है (उदा. अय्यू. 1:6) और नया नियम जिन्हें "स्वर्गदूत" कहता है, परन्तु एक महत्त्वपूर्ण आपत्ति यह है कि मनुष्य की सृष्टि स्वर्गदूतों की समानता में नहीं की गई थी, और न ही इस बात का कहीं कोई संकेत है कि मनुष्य की सृष्टि में स्वर्गदूतों की कोई भूमिका थी। कई मसीहियों और कुछ यहूदियों का मानना है कि "हम" के उपयोग के द्वारा परमेश्वर अपने आप से बातें कर रहा था, क्योंकि उत्पत्ति 1:27 (तुल. 5:1) के अनुसार परमेश्वर ने अकेले ही सृष्टि की उत्पत्ति की है; इसे बाइबल में त्रिएकता का प्रथम संकेत कहा जा सकता है (तुल. 1:2)।

1:27 परमेश्वर ने . . . अपने स्वरूप में इस वाक्यांश पर बहस होती रही है। बहुत से विद्वान प्राचीन निकट पूर्व में प्रचलित इस आम धारणा को मानते हैं कि राजा ईश्वर का दृश्य प्रतिनिधि होता था; इस कारण राजा ईश्वर के बदले में शासन करता था। अब चूंकि वचन 26 में परमेश्वर के स्वरूप का सम्बन्ध समुद्र, आकाश और पृथ्वी के सभी सृजित प्राणियों पर शासन करने से है, तो यह माना जा सकता है कि यहाँ मानवजाति को परमेश्वर द्वारा अधिकृत या प्रतिनिधि के रूप में पृथ्वी पर अधिकार रखने और प्रशासन करने का अधिकार दिया गया है (व. 28 पर टिप्पणी देखें)। अन्य विद्वानों ने **नर और नारी** के प्रतिरूप का विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि मनुष्यजाति परमेश्वर के स्वरूप को आपसी रिश्तों में अभिव्यक्त करती है, विशेषकर विवाह तथा समाज के अन्य विस्तार दोनों ही में सुचारु रीति से कार्य करने वाले मानव-समाज के रूप

28 [s]अध्या. 9:1, 7
29 [t]अध्या. 9:3; भज. 104:14, 15; 145:15, 16
30 [u]भज. 147:9
31 [v]प्रभो. 7:29; 1 तीमु. 4:4

अध्याय 2
1 [w]व्यव. 4:19; भज. 33:6
2 [x]निर्ग. 20:8-11; 31:17; व्यव.5:12-14; इब्रा. 4:4

28 परमेश्वर ने उन्हें आशीष दी, और उनसे कहा, [s]"फूलो-फलो और पृथ्वी में भर जाओ और उसे अपने वश में कर लो, और समुद्र की मछलियों तथा आकाश के पक्षियों और पृथ्वी पर चलने-फिरने वाले प्रत्येक जीव-जन्तु पर अधिकार रखो।" **29** फिर परमेश्वर ने कहा, "देखो, मैंने समस्त पृथ्वी का प्रत्येक पौधा जो बीज उत्पन्न करता है तथा प्रत्येक पेड़ जिस पर बीज वाले फल होते हैं, तुम्हें दिया है। सब [t]तुम्हारे भोजन के लिए हों। **30** तथा पृथ्वी के [u]प्रत्येक पशु और आकाश के प्रत्येक पक्षी और पृथ्वी पर चलने-फिरने वाले प्रत्येक जन्तु अर्थात प्रत्येक जिस में जीवन का प्राण है—प्रत्येक को भोजन के लिए सब प्रकार के हरे पौधे दिए हैं।" और वैसा ही हो गया। **31** [v]तब परमेश्वर ने सब कुछ जो उसने बनाया था देखा। और देखो, वह बहुत अच्छा था। तब संध्या हुई, फिर सवेरा हुआ। इस प्रकार छठवां दिन हो गया।

सातवां दिन: विश्राम

2 इस प्रकार आकाश और पृथ्वी तथा उनके [w]समस्त गणों की रचना पूर्ण हुई। **2** और परमेश्वर ने अपना कार्य जिसे वह करता था, [x]सातवें दिन पूरा किया। और उसने सातवें दिन अपने उस सम्पूर्ण कार्य से जिसे वह करता था, विश्राम किया। **3** तब परमेश्वर ने सातवें दिन को आशीषित किया और उसे पवित्र ठहराया, क्योंकि उस दिन सृष्टि के समस्त कार्य से जो उसने रचा और बनाया परमेश्वर ने विश्राम किया।

में। परम्परागत रूप में स्वरूप को मनुष्य के अन्य पशुओं से भिन्न होने की क्षमताओं के सन्दर्भ में समझा जाता है—अर्थात मनुष्य किन तरीकों में परमेश्वर से मेल खाता है, जैसे कि तर्क क्षमता, नैतिकता, भाषा और प्रेम एवं समर्पण से प्रशासित सम्बन्धों को रखने की क्षमता, और कला की सभी विधाओं में सृजनशीलता। इन सभी अन्तर्दृष्टियों को एक साथ लेकर यह समझा जाता है कि यह *स्वरूप* (कि मनुष्य बहुत सी बातों में परमेश्वर के समान है) शासन करने में परमेश्वर का *प्रतिनिधित्व* करने, और परमेश्वर के साथ, और एक दूसरे के साथ एवं शेष सृष्टि के साथ भी योग्य *सम्बन्ध* स्थापित करने का अवसर प्रदान करता है। यह "स्वरूप" और यह सन्मान मानवजाति के रूप में "नर और नारी" *दोनों* पर लागू होता है। (यह विचारधारा मेसोपोटामिया की प्राचीन निकट पूर्व की धारणाओं के सन्दर्भ में अद्वितीय है, अर्थात, उनके अनुसार देवताओं ने मनुष्यों का सृजन केवल देवताओं के लिए काम करने के लिए किया था।) इब्रानी शब्द *आदम* जिसका अनुवाद **मनुष्य** है, अकसर एक प्रजातिगत शब्द है जो नर और नारी, दोनों को सूचित करता है, जबकि कभी-कभी यह स्त्री से विभिन्नता दर्शाने के लिये पुरुष के लिए उपयोग किया जाता है (2:22, 23, 25; 3:8, 9, 12, 20): तब यह एक उचित नाम "आदम" बन जाता है (2:20; 3:17, 21; 4:1; 5:1) इस चरण में मानवजाति अन्य सभी प्राणियों से अलग रखी गयी है, और पृथ्वी के शासनकर्ता के रूप में महिमा और आदर का मुकुट उन्हें पहनाया गया है (तुल. भजन 8:5-8) हालाँकि उत्पत्ति 3 में दिए गए घटनाओं के वर्णन, सृष्टि में मनुष्यजाति के पद को लेकर एक महत्त्वपूर्ण अभिप्राय को व्यक्त करेंगे।

1:28 जिस प्रकार परमेश्वर ने जलचरों और नभचरों को आशीषित किया (व. 22) वैसे ही वह मानवजाति को आशीषित करता है। **फूलो-फलो और पृथ्वी में भर जाओ।** बार-बार आने वाला यह मूल भाव सम्पूर्ण उत्पत्ति में ईश्वरीय आशीष से जुड़ा हुआ है (9:1, 7; 17:20; 28:3; 35:11; 48:4 देखें) और इस बाइबल सम्मत विचारधारा का आधार है कि विश्वासयोग्य सन्तानों का पालन-पोषण करना मनुष्यों के लिये परमेश्वर की सृष्टि की योजना का एक भाग है। सृष्टि की परमेश्वर की योजना यह है कि समस्त पृथ्वी उन लोगों की आबादी से भर जाए जो उसे जानते हैं, और उसके द्वारा अधिकृत अधिकारी या प्रतिनिधि के रूप में बुद्धिमानी से उसकी सेवा करते हैं। **उसे अपने वश में कर लो।** शब्द "वश" (इब्रा. *कबाश)* का अन्य स्थलों पर अर्थ है मनुष्यों या भूमि को अपने वश करना ताकि वह अधिकार करने वाले को सेवाएँ दें (गिन. 32:22, 29)। यहाँ विचार यह है कि पुरुष और स्त्री पृथ्वी के संसाधनों को अपने लिये लाभदायक बनाएँ जिसका आशय यह हुआ कि वे खोजबीन करें और पृथ्वी के संसाधनों को विकसित करें और उन्हें सामान्य रूप में मनुष्यों के लिये उपयोगी बनाएँ। यह आज्ञा युक्तियुक्त वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास की बुनियाद रखती है; बुरे उपयोग जिन पर मनुष्यों का वश है ये उत्पत्ति 3 के परिणाम हैं। **प्रत्येक जीव-जन्तु पर।** परमेश्वर के प्रतिनिधि के रूप में मनुष्यों को पृथ्वी के सभी जीवित प्राणियों पर शासन करना है। किन्तु इन आज्ञाओं का अर्थ पृथ्वी का शोषण और उसके प्राणियों को मानवीय लालच की तृप्ति का साधन बनाने का अधिकार नहीं है, क्योंकि यह तथ्य कि आदम और हव्वा "परमेश्वर के स्वरूप" में थे (1:27) परमेश्वर की उस अपेक्षा को दर्शाता है कि मनुष्य पृथ्वी का उपयोग बुद्धिमानी से करेंगे और प्रशासन करते समय उसी दायित्व और परवाह का संज्ञान रखेंगे जैसा परमेश्वर अपनी सम्पूर्ण सृष्टि के लिए रखता है।

1:31 पहली ही छः घटनाओं के विषय में यह पुष्टि करने के बाद कि सृष्टि के विशेष पहलू "अच्छे" हैं (वचन 4, 10, 12, 18, 21, 25) अतः अब पुरुष और स्त्री का सृजन करने के बाद परमेश्वर कहता है कि **सब कुछ** जो उसने बनाया था, वह बहुत अच्छा है; अतिरिक्त शब्द **देखो** पाठकों को आमन्त्रित करता है कि वे परमेश्वर की दृष्टि से सृष्टि के कार्य की कल्पना करें। यद्यपि आज के संसार में बहुत सी बातें 'अच्छी' प्रतीत नहीं होती, किन्तु आरम्भ में ऐसा नहीं था। उत्पत्ति की पुस्तक आगे यह स्पष्ट करती है कि ऐसा परिवर्तन क्यों हुआ और संकेत करती है कि परमेश्वर पर दोष नहीं लगाना चाहिए। वह सब जो उसने सृजा बहुत अच्छा था। यह परमेश्वर के उद्देश्यों का उत्तर है और उसकी उमड़ने वाली भलाई को अभिव्यक्त करता है। पाप के आक्रमण के बावजूद (अध्या. 3) भौतिक सृष्टि अपनी अच्छाई को बरकरार रखती है (तुल. 1 तीमु. 4:4)।

2:1-3 परमेश्वर ने सृष्टि की व्यवस्था की प्रक्रिया पूरी कर ली है, इस पर बल देकर ये वचन उत्पत्ति की पुस्तक के आरम्भिक भाग को निष्कर्ष तक पहुँचाते हैं। परमेश्वर ने **विश्राम किया** यह बार-बार कहा गया शब्द इस अर्थ में नहीं है कि वह परिश्रम करके थक गया था। अध्याय 1 में बिना थकान के और सहजता से सब कुछ उत्पन्न करने की बात कुछ और ही विचार देती है। बल्कि, परमेश्वर ने विश्राम किया यह मूल भाव सृष्टि के उद्देश्य की ओर संकेत करता है। प्राचीन निकट पूर्व के विभिन्न पौराणिक अभिलेखों में ईश्वरीय विश्राम को मन्दिर निर्माण से जोड़ा गया है। पृथ्वी के लिये परमेश्वर का उद्देश्य यह है कि वह उसके निवास का स्थान बने; यह केवल उसके प्राणियों का घर ही नहीं है। इस दिन परमेश्वर के समस्त "कार्य" (उसने **पूरा किया**, "विश्राम किया," "आशीषित किया," "पवित्र ठहराया") इस आनन्दमय ढाँचे में सटीक बैठते हैं। पृथ्वी को ईश्वरीय पवित्र स्थान मानने की अवधारणा, जो आगे 2:4-25 में विकसित की गई है, समस्त बाइबल में प्रवाहित होती है, जिसका चरम बिन्दु भविष्य की एक वास्तविकता है जिसे प्रेरित यूहन्ना प्रका. 21:1-22:5 में "नये आकाश और नयी पृथ्वी" के अपने दर्शन में देखता है। **परमेश्वर ने सातवें दिन को आशीषित किया और उसे पवित्र ठहराया** (उत्प. 2:3)। ये शब्द

आदम और हव्वा

4 आकाश और पृथ्वी के सृजे जाने का
अर्थात जिस दिन यहोवा परमेश्वर ने पृथ्वी
और आकाश को बनाया उसका [y]विवरण यह है :

5उस समय मैदान का कोई [z]पौधा पृथ्वी पर न था, और न ही मैदान का कोई पौधा उगा था, क्योंकि यहोवा परमेश्वर ने पृथ्वी पर जल नहीं बरसाया था, और भूमि पर [a]खेती करने के लिए कोई मनुष्य भी नहीं था। **6**परन्तु पृथ्वी से कुहरा[1] उठता था जिस से भूमि की सारी सतह सिंच जाती थी। **7**तब यहोवा परमेश्वर ने आदम को [b]भूमि की मिट्टी से रचा, और

4[y]अध्या. 1:1
5[z]अध्या. 1:11, 12
[a]अध्या. 3:23
7[b]अध्या. 3:19, 23; 18:27; भज. 103:14; सभो. 12:7; 1 कुरि.15:47

[1]या *जल-स्रोत*

उस कर्तव्य का आधार हैं जिसे परमेश्वर ने इस्राएलियों के लिये नियत किया कि वे सब्त के दिन अपने सामान्य परिश्रम से विश्राम करें (निर्ग. 20:8-11 देखें)। इस दिन के लिये *'तब संध्या हुई, फिर सवेरा हुआ'* यह वाक्यांश दोहराया नहीं गया है, जो कई लोगों को यह सोचने के लिए विवश करता है कि सातवाँ दिन अब भी चल रहा है (जो यूह. 5:17; इब्रा 4:3-11 में रेखांकित प्रतीत होता है)।

2:4-4:26 *पृथ्वी के सबसे आरम्भिक लोग।* आरम्भ में अदन की वाटिका में केन्द्रित, उत्पत्ति के इस भाग का वृतान्त स्मरण कराता है कि परमेश्वर की क्रमबद्ध सृष्टि, मानव दम्पति के आज्ञाउल्लंघन के कारण कैसे अराजकता और गड़बड़ी में आ गई। बाद में कैन और हाबिल का वृतान्त, और तत्पश्चात लेमेक (अध्या. 4) दर्शाता है कि संसार हिंसा में गिरता जा रहा है जो जल-प्रलय की ओर ले जाता है (6:11, 13) ये सभी घटनाएँ न केवल उत्पत्ति वरन् सम्पूर्ण बाइबल को समझने की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण हैं।

2:4-25 *अदन के पवित्र स्थान में पुरुष एवं स्त्री।* उत्पत्ति के अध्याय 1 में सृष्टि के विस्तारित परिदृश्य के तुरन्त बाद छठवें दिन का एक पूरक अभिलेख है जो मानव दम्पति के सृजन पर प्रकाश डालता है जिन्हें अदन की वाटिका में रखा गया है। यह भाग शैली और विषयवस्तु में पूर्ववर्ती भाग से उल्लेखनीय रूप से भिन्न है; यह भाग अध्याय 1 की किसी बात का विरोध या खण्डन नहीं करता, परन्तु यह 1:27 में लिखे गए विवरण के सम्बन्ध में और अधिक विस्तार से जानकारी देता है। एक सम्प्रभु, समझ से परे परमेश्वर को एक ऐसे परमेश्वर के रूप में दर्शाया गया है जो अन्तर्यामी और व्यक्तिगत, दोनों ही है। परमेश्वर के ये दोनों चित्रण एक दूसरे को सन्तुलित करते हैं, और एक साथ मिलकर किसी एक की तुलना में उसके स्वभाव के वर्णन से अधिक वास्तविक और अधिक समृद्ध वर्णन करते हैं। जबकि अध्याय 1 मनुष्यों के राजकीय चरित्र पर बल देता है, अध्याय 2 उनके याजकीय पद पर प्रकाश डालता है।

2:4 उसका विवरण यह है। यह उन 11 ऐसे शीर्षकों में प्रथम है जो उत्पत्ति की पुस्तक का ढाँचा तैयार करते हैं (तुल., 5:1, जिसमें कुछ-कुछ अन्तर है; 6:9; 10:1; 11:10; 11:27; 25:12; 25:19; 36:1; 36:9; 37:2; साथ ही परिचय: उत्पत्ति की पुस्तक का क्रम देखें)। प्रत्येक शीर्षक उल्लेख किए गए व्यक्ति या विषयवस्तु से जो बात सामने आती है उस पर केन्द्रित है। उत्पत्ति के यूनानी अनुवाद (सेप्टुआजिण्ट) में आरम्भिक अनुवादकों ने इब्रानी के शब्द "पीढ़ियों" (इब्रा. *टोलेडोट)* को दर्शाने के लिए *उत्पत्ति* शब्द का उपयोग किया; उसी शब्द से "उत्पत्ति" (अंग्रेजी का Genesis) शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। शेष वचन को बड़ी दक्षता से दर्पण में प्रतिबिम्ब (केइसमस, अर्थात काव्य पदबंध विपर्यय) के रूप में क्रमबद्ध किया गया है, कविता की दो पंक्तियों के खण्ड जो एक दूसरे के साथ उलटे क्रम में सादृश्यता रखते हैं जैसे: **आकाश** (क), **पृथ्वी** (ख), **सृजे जाने का** (ग), **जिस दिन** यहोवा ने उन्हें **बनाया** (ग), **पृथ्वी** (ख) **आकाश** (क)। यह रूप पदबंध विपर्यय के दो खण्डों को एकीकृत करता है, और ऐसा करके पाठक को आमन्त्रित करता है कि वह 2:5-25 का 1:1-2:3 के साथ स्वर योजन स्थापित करे। **यहोवा परमेश्वर।** 1:1 से 2:3 के पूरे विवरण में "परमेश्वर," इस प्रजातिगत शब्द का उपयोग एक ऐसे ईश्वर को दर्शाने के लिए किया गया है जो सर्वश्रेष्ठ, समझ से परे सृष्टिकर्ता है। अब पाठक का परिचय परमेश्वर के व्यक्तिगत नाम "याहवेह" से कराया जाता है (जिसका अनुवाद "यहोवा" किया गया है क्योंकि प्राचीन यहूदी परम्परा है कि याहवेह नाम के बदले इब्रानी के अन्य नाम (शब्द) को रखा जाये, जिसका अर्थ प्रभु *[एडोनाय]* है, और बाइबल के पाठ पढ़ते समय वे "याहवेह" के लिये इस शब्द का उपयोग करते हैं)। इस पूरे वृतान्त में "याहवेह" का उपयोग परमेश्वर के व्यक्तिगत और सम्बन्धसूचक चरित्र या स्वभाव को रेखांकित करता है। अंग्रेजी में "यहोवा" के स्थान पर लॉर्ड (यहोवा) का अनुवाद करने का प्रचलन सेप्टुआजिण्ट के पारम्परिक अनुवाद के कारण है (यूनानी में *कूरियोस,* "प्रभु" है)। इस प्रकार, नए नियम के लेखकों ने इस अनुवाद का बहुत बार उपयोग किया था और परमेश्वर के नाम "याहवेह" के बदले में यूनानी शब्द *कूरियोस,* "प्रभु" का उपयोग किया था (याहवेह नाम पर अधिक जानकारी के लिये, निर्ग. 3:14; 3:15 पर टिप्पणी देखें)।

2:5-7 यह वचन विशेषकर 1:26-31 पर बल देते हुए परमेश्वर द्वारा मानव (पुरुष) के सृजन पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। यहाँ प्रमुख कार्य परमेश्वर द्वारा पुरुष की "रचना" करना है (2:7); वचन 5-6 उन स्थितियों का वर्णन करते हैं जिनमें यह कार्य किया गया। शब्द **भूमि** का अभिप्राय समस्त पृथ्वी (इब्रा. *एरेट्स),* सूखी भूमि (तुल.1:10), या एक विशेष परिक्षेत्र (तुल. 2:11-13) से हो सकता है (एच.एस.बी. के फुटनोट पढ़ें)। अध्याय 1 की सत्यता दिखाने (2:4 पर टिप्पणी देखें) और **जल** की **बरसात** के उल्लेख का ध्यान रखते हुए, एच.एस.बी द्वारा "भूमि" शब्द का उपयोग सर्वोत्तम है। यह भूमि कहाँ थी, उस स्थान का नाम नहीं बताया गया है, वर्षा की ऋतु आरम्भ होने पर थी, अतः भूमि अब भी सूखी थी और उस पर **कोई पौधा** न था। ये स्थितियाँ मनुष्य की उत्पत्ति से पूर्व थीं, जो यह बताती हैं कि पौधे न होने का कारण भूमि को सींचने वाला मनुष्य नहीं था (सूखी भूमि में वनस्पति के उगने के लिये यह एक सामान्य तरीका है)। **तब यहोवा परमेश्वर ने आदम को भूमि की मिट्टी से रचा** (व. 7)। क्रिया शब्द "रचा" (इब्रा. *यात्सर)* एक कुम्हार की तस्वीर प्रस्तुत करता है जो मिट्टी को एक निश्चित आकार प्रदान करता है। मनुष्य और भूमि के बीच निकट सम्बन्ध उनके लिये उपयोग में आये इब्रानी शब्दों से अभिव्यक्त होते हैं, *आदम* और *आदमाह।* **और उसके नथनों में जीवन का श्वास फूंका** (व. 7)। यहाँ परमेश्वर ने उसमें जीवन का श्वास फूंका—भौतिक, मानसिक और आत्मिक जीवन—जो उसके स्वरूप में बनाया गया था। **जीवित प्राणी।** इब्रानी भाषा में समुद्र और भूमि के प्राणियों को दर्शाने के लिए 1:20, 24 में इसी शब्द का उपयोग किया गया है। यद्यपि, मनुष्यों और अन्य जीवित प्राणियों में बहुत कुछ एक समान है, फिर भी, परमेश्वर ने केवल मनुष्यों को एक राजकीय और याजकीय पद दिया और केवल उन्हें ही "अपने स्वरूप में" सृजा (1:27)। (1 कुरि. 15:45 में इस वृतान्त का पौलुस द्वारा दिया गया उद्धरण देखें)।

7 [c]अय्यू. 27:3 [d]अध्या. 7:22; अय्यू. 33:4; यशा. 2:22 [e]1 कुरि. 15:45 में उद्धरित
8 [f]व. 15; अध्या. 13:10; यशा. 51:3; यहे. 28:13; 31:8; योए. 2:3
9 [g]अध्या. 3:22; प्रका. 2:7; 22:2, 14 [h]व. 17
11 [i]अध्या. 10:7, 29; 25:18; 1 शमू. 15:7
14 [j]दानि. 10:4
15 [k]व. 8

उसके [c]नथनों में जीवन का श्वास [d]फूंका : और [e]आदम जीवित प्राणी बन गया।

अदन की वाटिका

8 तब यहोवा परमेश्वर ने पूर्व की ओर अदन में एक [f]वाटिका लगाई, और उसमें आदम को जिसे उसने बनाया था, रखा। 9 और यहोवा परमेश्वर ने सब प्रकार के वृक्ष जो देखने में मनोहर और खाने के लिए अच्छे थे, भूमि से उगाए, और वाटिका के बीच में [g]जीवन के वृक्ष को [h]तथा भले-बुरे के ज्ञान के वृक्ष को भी लगाया।

10 वाटिका को सींचने के लिए अदन में से एक नदी बहती थी जो आगे बहकर चार नदियों में विभाजित हो जाती थी। 11 पहली का नाम पीशोन है; यह [i]हवीला नाम के सारे देश को, जहां सोना पाया जाता है, घेरे हुए है। 12 उस देश का सोना उत्तम होता है। वहां मोती और सुलैमानी पत्थर भी मिलते हैं। 13 दूसरी नदी का नाम गीहोन है: यह कूश के सारे देश को घेरे हुए है। 14 और तीसरी नदी का नाम [j]दजला है: यह अश्शूर के पूर्व की ओर बहती है। चौथी नदी का नाम फ़रात है। 15 तब यहोवा परमेश्वर ने आदम को लेकर [k]अदन की वाटिका में रखा कि वह उसकी बागवानी और देख-भाल करे। 16 फिर यहोवा परमेश्वर ने आदम को यह कहकर आज्ञा दी: "तू वाटिका के किसी भी पेड़ का फल बेखटके खा सकता है,

2:8-9 परमेश्वर ने **पूर्व की ओर अदन में एक वाटिका** लगाकर मनुष्य के लिए एक उपयुक्त वातावरण का प्रयोजन किया। "अदन" नाम एक अर्थ में "आनन्द और सुख" को सूचित करता है, सम्भवतः यह उस परिक्षेत्र को दर्शाता है जो स्वयं वाटिका से कहीं अधिक बड़ा था। परमेश्वर ने मनुष्य को "भूमि की मिट्टी" से रचा (व. 5-7 देखें) और उसे वाटिका में **रखा** (व. 15)। यूनानी के आरम्भिक अनुवाद में (सेप्टुआजिण्ट) इब्रानी में प्रयुक्त शब्द "वाटिका" का अनुवाद करने के लिए इस समझ पर *पैराडैसोस* का उपयोग किया गया है कि यह शब्द राजकीय उद्यान की सादृश्यता दिखाता है (जिससे शब्द "स्वर्गलोक" निकला है; तुल. लूका 23:39-43 पर टिप्पणी देखें)। वाटिका की बहुतायत या भरपूरी का चित्रण इस बात में है कि उसमें **सब प्रकार के वृक्ष जो देखने में मनोहर और खाने के लिये अच्छे थे** लगाए गए थे (उत्प. 2:9) और यह 3:6 की दुखद पूर्व छाया है (वहाँ टिप्पणी देखें)। किन्तु दो वृक्षों का वहाँ विशेष रूप में उल्लेख है: **जीवन का वृक्ष** और **भले बुरे के ज्ञान का वृक्ष** (2:9)। इन वृक्षों के बारे में अपेक्षाकृत बहुत कम बातों का वर्णन किया गया है, पर उनकी भूमिकाओं से उन्हें समझाया जा सकता है जो उन्होंने उत्पत्ति 2-3 के अभिलेख में अदा कीं, विशेषकर अध्याय 3 में। "जीवन का वृक्ष" पर 3:22-24 पर टिप्पणी देखें, और "भले बुरे के ज्ञान का वृक्ष" पर 2:17 की टिप्पणी देखें।

2:10-14 अदन की वाटिका में से बहती **नदी** का सामान्य विवरण जो **आगे बहकर चार नदियों** में विभाजित हो जाती है (व. 10) दर्शाता है कि अदन की वाटिका एक मध्य स्थान में थी। किन्तु अत्यन्त विशेष और विस्तार में संकेत के बावजूद अदन का भौगोलिक स्थान एक रहस्य बना रहता है। यद्यपि **दजला** और **फरात** (व. 14) मेसोपोटामिया को घेरने वाली दो नदियाँ हैं, फिर भी **पीशोन** और **गीहोन**, साथ ही **हवीला** और **कूश** के प्रदेश (व. 11, 13) सन्तोषजनक ढंग से पहचाने नहीं जा सके हैं (दाहिनी ओर मानचित्र देखें)। **सोना** और **सुलैमानी पत्थर** का सन्दर्भ (व. 11, 12) सुझाता है कि वह भूमि संसाधनों से समृद्ध थी; इन वस्तुओं को बाद में निवास स्थान और मन्दिर बनाने में उपयोग किया गया।

2:15-16 पिछले वचनों में प्रस्तुत अदन की वाटिका की समस्त तस्वीर सुझाती है कि यह बगीचा-स्वरूप वाटिका ईश्वरीय पवित्र स्थान का हिस्सा है। **मनुष्य** को वाटिका में इसलिए **रखा गया कि वह उसकी बागवानी और देखभाल करे।** शब्द "बागवानी" (इब्रा. *आबेद;* तुल. व. 5; 3:23; 4:2, 12; नीति. 12:11; 28:19) भूमि को तैयार करने, जोतने और खोदने से सम्बन्धित है, और शब्द "देखभाल" (इब्रा. *शामार*) इस विचार की पुष्टि करता है। अब क्योंकि काम करने की यह आज्ञा आदम के पाप में गिरने से पहले की है, इस कारण काम करना पाप का परिणाम नहीं है और न ही यह उपेक्षा के योग्य है। उत्पादक कार्य सृष्टि में मनुष्य के लिए परमेश्वर के भले उद्देश्य का एक भाग है। बाद में यही दो क्रिया शब्द निवास स्थान में याजकों और लेवियों के काम करने के सन्दर्भ में उपयोग किए गए हैं ("सेवा करना," [इब्रा. *आबेद*] और "रक्षा करना" [इब्रा. *शामार];* उदा. निर्ग. 3:7-8; 18:7)। मनुष्य की भूमिका केवल बागवान की नहीं परन्तु संरक्षक की भी थी। एक याजक के रूप में, उसे बगीचे की पवित्रता को बनाकर रखना था जो संलग्न मन्दिर के भवन का एक भाग था। **फिर यहोवा परमेश्वर ने आदम को यह कहकर आज्ञा दी।** यह तथ्य कि परमेश्वर ने आदम को आज्ञा दी दर्शाता है कि परमेश्वर ने "आदम" को अगुवाई करने की भूमिका दी, जिसमें समस्त सृष्टि की निगरानी और देखभाल ("रक्षा") करने की जिम्मेदारी भी शामिल थी (उत्प. 2:15—इस भूमिका में उसकी पत्नी के रूप में हव्वा (व. 18, "उसके लिए उपयुक्त एक सहायक") की अगुवाई करने की जिम्मेदारी भी शामिल थी। (नए नियम में पति-पत्नी के बीच सम्बन्धों को समझने के लिये इफि. 5:22-33 देखें)।

अदन की वाटिका

उत्पत्ति की पुस्तक अदन की वाटिका का वर्णन चार नदियों के उद्गम के सन्दर्भ में करती है। हालाँकि दो नदियाँ अज्ञात हैं (पीशोन और गीहोन) फिर भी अन्य दो नदियाँ दजला और फरात की सर्वमान्य पहचान से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अदन उनके सबसे उत्तर या दक्षिणी सिरे पर था।

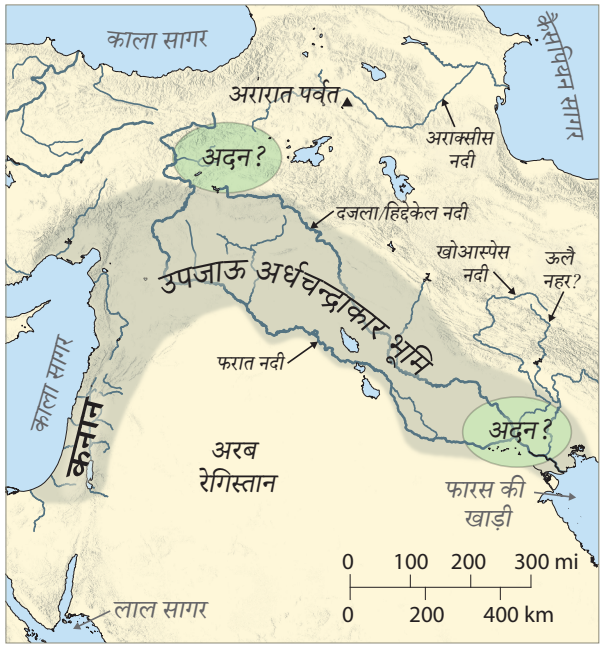

17 परन्तु जो भले और बुरे के ज्ञान का वृक्ष है [l]उस में से कभी न खाना, क्योंकि जिस दिन तू उसमें से खाएगा उसी दिन
तू [m]अवश्य मर जाएगा।"

नारी की सृष्टि

18 फिर यहोवा परमेश्वर ने कहा, "आदम का अकेला रहना अच्छा नहीं। [n]मैं इसके लिए एक उपयुक्त सहायक
बनाऊंगा" 19 [o]और यहोवा परमेश्वर भूमि में से प्रत्येक जाति के वन-पशु और आकाश के सब प्रकार के पक्षियों को
रचकर [p]आदम के पास ले आया कि देखें कि वह उनका क्या क्या नाम रखता है; और आदम ने प्रत्येक जीवित प्राणी
को जो नाम दिया, वही उसका नाम हो गया। 20 और आदम ने सब घरेलू पशुओं, आकाश के पक्षियों, और भूमि के सब
वन-पशुओं के नाम रखे, पर आदम के योग्य कोई सहायक न मिला। 21 अत: यहोवा परमेश्वर ने आदम को [q]गहरी नींद
में डाल दिया, और जब वह सो रहा था तो उसने उसकी एक पसली निकालकर उसके स्थान में मांस भर दिया। 22 तब
यहोवा परमेश्वर, आदम में से निकाली गई उस पसली से एक स्त्री की रचना[1] करके, उसे आदम के पास ले आया।
23 और आदम ने कहा,

"यह तो मेरी [r]हड्डियों में की हड्डी,
और मेरे मांस में का मांस है;
अत: यह नारी कहलाएगी,
क्योंकि यह [s]नर में से निकाली गई है।"[2]

[1]इब्रानी *का निर्माण* [2]*स्त्री* (*ईश्शा*) और *पुरुष* (*ईश*) के इब्रानी शब्दों का उच्चारण एक जैसा लगता है

17 [l]अध्या. 3:1-3, 11, 17 [m]रोमि. 6:23; याकू. 1:15
18 [n]1 कुरि. 11:9; 1 तीमु. 2:13
19 [o]अध्या. 1:20, 24 [p]भज. 8:6
21 [q]अध्या. 15:12; 1 शमू. 26:12
23 [r]अध्या. 29:14; न्यायि. 9:2; 2 शमू. 5:1; 19:13; [इफि. 5:28-30] [s]1 कुरि.11:8

2:17 यद्यपि परमेश्वर ने उदारतापूर्वक वाटिका के किसी भी वृक्ष का फल खाने की अनुमति दी थी, फिर भी उसने **भले और बुरे के ज्ञान के वृक्ष** का फल खाने से मना किया था (व. 17)। इस फल के विषय में विभिन्न प्रकार से समझा जा सकता है कि वह (1) यौन जागरूकता उत्पन्न करता है, (2) नैतिक रूप में भेदभाव, (3) नैतिक जिम्मेदारी और (4) नैतिक अनुभव देता है। इन सम्भावनाओं में अन्तिम ही सबसे अधिक सम्भावित है: आज्ञा मानने या न मानने के द्वारा मानव दम्पति अनुभव से भले बुरे को जानेंगे। "यहोवा का भय मानने" का परिणाम बुद्धि है (नीति. 1:7), जबकि आज्ञाउल्लंघन का परिणाम दासत्व है। **उसी दिन** का अभिप्राय निश्चित और अवश्य से है, तुरन्त से नहीं (उदा. 1 राजा. 2:42)। उत्पत्ति 3:4-5 पर टिप्पणी देखें। **तू अवश्य मर जाएगा** (2:17)। यह किस प्रकार की "मृत्यु" का खतरा है: शारीरिक, आत्मिक या किसी प्रकार का योग? इब्रानी शब्द का इनमें से किसी भी विचार के लिए उपयोग किया जा सकता है, और इसे खोजने का एकमात्र तरीका यह देखना है कि जैसे-जैसे वृतान्त प्रकाशित होता जाता है तब उसमें क्या घटनाएँ होती हैं। (3:4-5 पर टिप्पणी देखें)। धर्मविज्ञानियों ने इस विषय पर चर्चा की है कि क्या 2:16-17 और 1:28-30 के निर्देश मिलाकर, इन्हें आदम के साथ परमेश्वर की वाचा कहा जा सकता है या नहीं। कुछ इस बात से इनकार करते हैं क्योंकि "वाचा" के लिये प्रयुक्त इब्रानी शब्द (*बेरीत*) 6:18 से पहले उपयोग में नहीं आया है; कुछ इस बात पर बल देते हैं कि वाचाओं का सम्बन्ध छुटकारे से है। इसके प्रत्युत्तर में यह दिखाया जा सकता है कि वाचा की उपस्थिति हो सकती है, भले ही उपयोग में आये साधारण शब्द उसकी पहचान न करें: 2 शमूएल 7:4-17 वाचा के विषय में मौन है, परन्तु भज. 89:3, 28, 34, 39 सभी दाऊद के साथ परमेश्वर की प्रतिज्ञाओं के लिये "वाचा" शब्द का उपयोग करते हैं। यही बात होशे 6:7 के विषय में है जो आदम के साथ किसी वाचा की ओर संकेत करता है (वहाँ दी गई टिप्पणी को देखें)। साथ ही उत्पत्ति 9:1-17 में नूह के बारे में जैसा वर्णन है वह 1:28-30 की स्पष्ट प्रतिध्वनि है और स्पष्ट रूप में "वाचा" शब्द उपयोग करता है: एक दृष्टि से नूह एक नया आदम है, अर्थात वाचा का एक प्रतिनिधि। अन्त में इस बात के प्रमाण नहीं है कि बाइबल की वाचाएँ केवल छुटकारे के क्षेत्र तक सीमित हैं: शब्द वाचा केवल आपसी सम्बन्धों में बँधे दो व्यक्तियों या पक्षों के औपचारिक बन्धन को दर्शाता है जिसमें परस्पर व्यक्तिगत प्रतिबद्धता के आधार पर प्रतिबद्धता में बने रहने या उसे तोड़ देने के परिणाम शामिल हैं। इस पुरुष (आदम) ने यह वाचा शेष समस्त मानवजाति के प्रतिनिधि के रूप में पायी: 2:16-17 में **तू** एकवचन है, और यही 1 कुरि. 15:22 में पौलुस द्वारा आदम का मसीह के समान समस्त मानवजाति के प्रतिनिधि के रूप में उल्लेख करने का आधार है; तुल. रोमियों 5:12-19। उत्पत्ति 3:1-5 में प्रयुक्त "तुम" शब्द बहुवचन है जहाँ स्त्री का कथन दर्शाता है कि उसने स्वयं अपने लिये भी आज्ञा को माना है। साथ ही, आदम के आज्ञाउल्लंघन के कारण उसकी सन्तानें भी दण्ड की भागी हैं: जैसे आदम वाटिका में वापस नहीं लौट सकता वैसे ही वे भी वहाँ नहीं जा सकते, और वे पाप और दुर्दशा में गिरते हैं (अध्याय 4)।

2:18-25 इन वचनों में वर्णन है कि परमेश्वर ने आदम (पुरुष) के लिए कैसे एक उपयुक्त जीवनसाथी का प्रबन्ध किया।

2:18 अच्छा नहीं। यह 1:31 से असहमति है; स्पष्ट है कि यहाँ स्थिति अब तक "बहुत अच्छा" के स्तर तक नहीं पहुँची है। **मैं इसके लिए . . . बनाऊंगा।** यह 1 कुरि. 11:9 में पौलुस के कथन की व्याख्या करता है। आदम के लिए एक **उपयुक्त सहायक** पाने के लिये परमेश्वर सभी घरेलू पशुओं, पक्षियों और वन पशुओं को लाता है। परन्तु उनमें से कोई भी मनुष्य के लिये "उपयुक्त" नहीं ठहरता। "सहायक" (इब्रा. *ऐज़ेर*) वह है जो किसी क्षेत्र में "सहायता के लिए" बल की कमी को पूरा करता है। यह शब्द इस बात का संकेत नहीं करता कि सहायक सहायता पाने वाले से अधिक बलवन्त है या उससे निर्बल है। "उसके लिये उपयुक्त" या "उससे मेल खाने वाला" (तुल. एच.एस.बी. का फुटनोट) का अर्थ "उसके समान" नहीं है: एक पत्नी अपने पति की नकल नहीं, बल्कि उसकी पूरक है।

2:20 आदम . . . ने नाम रखे। पशुओं को नाम देने के द्वारा आदम ने अन्य सभी प्राणियों पर अपने अधिकार का प्रदर्शन किया। **आदम**। 5:1-2 पर टिप्पणी देखें।

2:23-24 जब जीवित प्राणियों में कोई उपयुक्त सहायक नहीं मिला तब परमेश्वर ने आदम के शरीर से उसके लिये एक स्त्री की रचना की। इस अनुच्छेद में पुरुष और स्त्री के बीच एकता के संज्ञान पर प्रकाश डाला गया है। आदम ने आनन्द से कहा **"यह तो मेरी हड्डियों में की हड्डी और मेरे माँस में का माँस है।"** यह शब्दावली अन्य स्थलों पर रक्त सम्बन्धियों के लिये उपयोग की गई है (29:14)। यह वाक्य और हव्वा के सृजन का वृतान्त यह विचार देते हैं कि विवाह में सभी मानवीय सम्बन्धों से अधिक बढ़कर घनिष्ठता है। यह बात समझना भी महत्त्वपूर्ण है कि परमेश्वर ने बहुत सी हव्वा नहीं परन्तु एक ही हव्वा को सृजा, वैसे ही उसने अन्य आदम नहीं

24 [t]इस कारण पुरुष अपने माता-पिता को छोड़ कर अपनी पत्नी से मिला रहेगा, और वे एक ही तन बने रहेंगे। 25आदम और उसकी पत्नी दानों नंगे थे, पर लजाते न थे।

पाप का आरम्भ

3 यहोवा परमेश्वर ने जितने बनैले पशु बनाए थे उन सब में [u]सर्प धूर्त था। और उसने स्त्री से कहा, "क्या परमेश्वर ने सचमुच कहा है कि तुम[1] इस वाटिका के किसी भी वृक्ष में से न खाना?" 2स्त्री ने सर्प से कहा, "वाटिका के वृक्षों के फल तो हम खा सकते हैं, 3परन्तु उस वृक्ष के फल में से जो वाटिका के बीचो-बीच है, परमेश्वर ने कहा है कि [v]न तो उस में से खाना और न उसे छूना, नहीं तो मर जाओगे।" 4[w]तब सर्प ने स्त्री से कहा, "तुम निश्चय न मरोगे! 5परमेश्वर तो जानता है कि जिस दिन तुम उसमें से खाओगे, तुम्हारी आंखें खुल जाएंगी और तुम भले और बुरे का ज्ञान पाकर

[1]वचन 1-5 में *तुम* के लिए इब्रानी शब्द बहुवचन है

24 [t]मत्ती. 19:5; मर. 10:7 में उद्धरित; 1 कुरि.6:16; इफि. 5:31;[भज. 45:10; 1 कुरि. 7:10, 11]

अध्याय 3

1 [u]मत्ती. 10:16; 2 कुरि.11:3; प्रका. 12:9; 20:2

3 [v]अध्या. 2:17

4 [w]व. 13; यूह. 8:44; [2 कुरि. 11:3]

सृजे। यह विचार ईश्वरीय विधान में विवाह को विषमलिंगी यौन सम्बन्ध और केवल एक पत्नी (या पति) की व्यवस्था के रूप में सृष्टि के समय निर्धारित करता है। साथ ही पति और पत्नी के बीच के निकट सम्बन्ध उनके माता-पिता के प्रति दायित्वों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं (**इस कारण पुरुष अपने माता-पिता को छोड़कर अपनी पत्नी से मिला रहेगा,** 2:24)। प्राचीन इस्राएल में, पुत्र विवाह करने के बाद दूर जाकर नहीं रहते थे परन्तु अपने माता-पिता के नजदीक ही रहते थे और पिता की भूमि के वारिस बनते थे। वे अपने माता-पिता को इस अर्थ में "छोड़" देते थे कि माता-पिता की तुलना में पत्नी के कल्याण को अधिक महत्त्व दें। शब्द "मिला रहेगा" का अभिप्राय किसी अन्य स्थल में वाचागत विश्वासयोग्यता के निर्वहन से है (उदा. व्यव. 10:20; साथ ही देखें कि पौलुस ने 1 कुरि. 6:16-17 में कैसे इन दोनों पाठों को एकसाथ मिलाकर समीक्षा की है); इस प्रकार बाइबल के अन्य पाठ विवाह को एक "वाचा" कह सकते हैं (उदा., नीति. 2:17; मला. 2:14)। इफिसियों 5:25-32 में दी गयी विवाह पर पौलुस की शिक्षा इसी पाठ पर आधारित है। एक दूसरे के लिये बने होने का यह संज्ञान आगे "पुरुष" और "स्त्री" के सम्बन्ध में शब्द चयन में प्रदर्शित होता है; इब्रानी में ये क्रमानुसार *ईश* और *ईशाह* है। इस विशेष गठबन्धन के फलस्वरूप उत्पत्ति 2:24 यह दर्शाता है कि पुरुष जब माता-पिता को छोड़कर पत्नी को ग्रहण करता है, तब वे **एक ही तन बने रहेंगे,** अर्थात एक इकाई (पति और पत्नी का एक हो जाना, जो यौन सम्बन्ध में अपने चरम पर पहुँचता है)। यीशु ने इस वचन का और 1:27 का उपयोग विवाह के विषय में अपना दृष्टिकोण बताने के लिये किया (मत्ती 19:4-5)।

2:25 नंगे थे पर लजाते न थे। वचन 18-25 का यह अन्तिम वर्णन निरपराध आनन्द की तस्वीर दर्शाता है और इस वृतान्त में आगे आने वाली घटनाओं की प्रत्याशा करता है। दम्पति की नग्नता का उल्लेख पुनः 3:7-11 में किया गया है, और उसी के जैसे स्वर वाले शब्द "नंगे" (इब्रा. *अरूम्मीम*) और "धूर्त" (3:1, इब्रानी *अरूम*) इस भाग के अन्त को अगले भाग के आरम्भ से जोड़ते हैं।

3:1-24 *दम्पति परमेश्वर के विरुद्ध बलवा करता है।* एक धूर्त सर्प की अचानक और अस्पष्ट उपस्थिति इस मानव दम्पति के लिए एक अत्यधिक महत्त्व की चुनौती लाती है। उन्होंने परमेश्वर के निर्देशों की अवमानना करने का विकल्प चुना जो कि स्वेच्छा से किया गया एक विद्रोह था जिसके समस्त सृष्टि के लिए भयानक परिणाम हैं। परिणामस्वरूप परमेश्वर की सृष्टि में अव्यवस्था उत्पन्न हो गई, अराजकता और गड़बड़ी ने उस समस्त सन्तुलित और सहज संगत के सम्बन्धों में खलल उत्पन्न कर दी जिन्हें परमेश्वर ने पहले स्थापित किया था।

3:1 इस वृतान्त में अति अल्प जानकारी के साथ बोलने वाला **सर्प** अचानक प्रवेश करता है। उसके उद्गम के बारे में कोई जानकारी नहीं दी गई है, केवल यह कि वह **बनैले पशुओं** में से एक था। यद्यपि अन्त में सर्प को परमेश्वर का शत्रु बताया गया है, फिर भी उसके विषय में दिए गए आरम्भिक परिचय में उसके वास्तविक स्वभाव को लेकर पूर्ण अस्पष्टता है। यद्यपि उसके बारे में यह कहना "बनैले पशुओं में सर्प सबसे धूर्त था," सम्भावित खतरे का संकेत है, परन्तु इब्रानी शब्द *अरूम* में हिन्दी शब्द "धूर्त" या "चतुर" जैसी नैतिक नकारात्मकता का लक्षण नहीं है। उसी तरह, सर्प का आरम्भिक प्रश्न अत्यधिक भोलेपन जैसा लगता है, जबकि वह परमेश्वर के वचन का गलत अर्थ लेकर जानबूझकर यह कहते हुए प्रश्न करता है, कि क्या परमेश्वर ने सचमुच कहा है कि **किसी भी वृक्ष में से न खाना।** क्या परमेश्वर ने जो कुछ कहा था सर्प ने उसे केवल गलत रूप में समझा था? इस प्रकार, लेखक ने सर्प की स्त्री से बातचीत में धूर्तता का चित्रण किया है। ध्यान देने योग्य बात है कि जब उसने स्त्री से बातें की तब सर्प ने जानबूझ कर परमेश्वर के व्यक्तिगत नाम याहवेह ("यहोवा") का उपयोग नहीं किया। यहाँ एक और संकेत यह है कि वाटिका में उसकी उपस्थिति एक खतरा है। यद्यपि उसके आरम्भिक शब्दों में धूर्ततायुक्त भोलापन है, फिर भी, परमेश्वर के विपरीत उसकी बातें उसकी मनोकामना और उद्देश्य पर सन्देह करने का कोई अवसर प्रदान नहीं करतीं। इस वचन में यह नहीं बताया गया है कि कब और कैसे सर्प दुष्ट बन गया। जैसे-जैसे वृतान्त आगे बढ़ता है, यह स्पष्ट हो जाता है कि वह एक साधारण सर्प नहीं है जो यहाँ क्रियाशील है; दुष्टता की एक शक्ति सर्प का उपयोग कर रही थी (व. 15 की टिप्पणी देखें)। परमेश्वर की इस घोषणा के बावजूद कि "जो कुछ उसने बनाया वह सब बहुत अच्छा था" (1:31), फिर भी, स्पष्ट है कि परमेश्वर का सृजन कार्य समाप्त होने के बाद किसी अज्ञात समय में बुराई ने सृजित संसार में प्रवेश कर लिया था। इसी प्रकार, बाइबल में कही भी बुराई या दुष्टता के अनन्तकालीन अस्तित्व का उल्लेख नहीं है (यशा. 14:12-15; यहे. 28:11-19 पर टिप्पणी देखें)।

3:2-3 स्त्री का प्रत्युत्तर 2:16-17 में दिए गए ईश्वरीय निर्देशों को अधिकांश रूप में प्रतिध्वनित करता है जिसका सम्बन्ध भले बुरे के ज्ञान के वृक्ष से है (वाचा के अर्थ पर अधिक जानने के लिये 2:17 की टिप्पणी देखें), भले ही स्त्री उस वृक्ष को भले और बुरे की पहचान कराने वाले वृक्ष के रूप में स्पष्ट पहचान नहीं सकी और उसने यह टिप्पणी की **और न उसे छूना।** ये मामूली पाठभेद सम्भवतः यह दर्शाने के लिए है कि इस स्तर पर भी स्त्री ने समझा कि मनुष्य परमेश्वर के निर्देशों का संशोधन कर उनमें बदलाव कर सकता है।

3:4-5 सर्प न केवल परमेश्वर के कहे कथन में सीधा विरोधाभास उत्पन्न करता है, बल्कि वह उस वृक्ष के फल को हासिल करने के योग्य बताता है: उस फल को खाकर यह मानव दम्पति **भले और बुरे का ज्ञान पाकर परमेश्वर के समान** हो जाएगा। सर्प की टिप्पणी में विडम्बना की अनदेखी नहीं की जा सकती। सर्प के विपरीत, मानव दम्पति को परमेश्वर के स्वरूप में सृजा गया था (1:26-27)। इस दृष्टि से वे पहले से ही परमेश्वर के समान थे। इसके अलावा परमेश्वर के स्वरूप में होने के कारण उन्हें समस्त पशुओं पर अधिकार का उपयोग करना था जिनमें सर्प भी शामिल था। परन्तु सर्प की बात मानकर उन्होंने परमेश्वर के उन पर रखे भरोसे को तोड़ दिया।

परमेश्वर के समान हो जाओगे।" 6जब स्त्री ने देखा कि उस वृक्ष का फल खाने के लिए अच्छा, आंखों के लिए लुभावना, तथा बुद्धिमान बनाने[1] के लिए चाहने योग्य है तो उसने उसका फल तोड़कर [x]खाया, और साथ ही साथ अपने पति को भी दिया, [y]और उसने भी खाया। 7[z]तब उन दोनों की आंखें खुल गईं [a]और उन्हें मालूम हुआ कि हम तो नंगे हैं। और उन्होंने अंजीर के पत्ते जोड़-जोड़ कर अपने लिए लंगोट बना लिए।

8फिर उन्हें दिन के ठण्डे समय[2] वाटिका में यहोवा परमेश्वर के चलने का शब्द सुनाई दिया, और यहोवा परमेश्वर की उपस्थिति से आदम तथा उसकी पत्नी वाटिका के वृक्षों में [b]छिप गए। 9तब यहोवा परमेश्वर ने पुकारकर आदम से पूछा, "तू कहां है?" 10उसने कहा, "वाटिका में तेरी वाणी को सुनकर मैं डर गया, [c]क्योंकि मैं नंगा था। अत: मैं छिप गया।" 11उसने कहा, "तुझे किसने बताया कि तू नंगा है? जिस वृक्ष में से खाने के लिए मैंने मना किया था क्या तू ने उस में से खाया है?" 12आदम ने कहा, [d]"जिस स्त्री को तूने मेरे साथ रहने को दिया है उसी ने उस वृक्ष का फल मुझे दिया, और मैंने खाया।" 13तब यहोवा परमेश्वर ने स्त्री से कहा, "तूने यह क्या किया?" स्त्री ने कहा, [e]"सर्प ने मुझे बहका दिया, और मैंने खाया।"

पाप का फल

14तब यहोवा परमेश्वर ने सर्प से कहा,
"इसलिए कि तूने यह किया है,
तू सब घरेलू पशुओं
और प्रत्येक वन-पशु से अधिक शापित है:
तू पेट के बल चला करेगा,
और जीवन भर
[f]मिट्टी चाटा करेगा।

[1]या *अन्तर्दृष्टि देने* [2]इब्रानी *हवा बहने के समय*

6[x]1 तीमु. 2:14 [y]व. 12, 17; होशे6:7
7[z]व. 5 [a]अध्या. 2:25
8[b][भज. 139:1-12; यिर्म. 23:23, 24]
10[c]व. 7; अध्या. 2:25
12[d]अध्या. 2:18; अय्यू. 31:33
13[e]व. 4; 2 कुरि. 11:3; 1 तीमु. 2:14
14[f]यशा. 65:25; मीका 7:17

यह मात्र आज्ञाउल्लंघन नहीं परन्तु विश्वासघात का कार्य (राजद्रोह) है। वे जिन्हें परमेश्वर के बदले में पृथ्वी पर प्रशासन करना चाहिए था, अपने अलौकिक राजा से विद्रोह करते हैं और उसके द्वारा सृजित प्राणियों में से एक की बात मानते हैं। **तुम निश्चय न मरोगे।** कभी-कभी यह दावा किया जाता है कि जब सर्प ने ये बातें इस दम्पति से कहीं वह सही था, क्योंकि वे नहीं "मरे"; आदम 930 वर्ष जीवित रहा (5:5)। साथ ही, उनकी आंखें खुल गईं (3:7) और परमेश्वर ने वचन 22 में यह स्वीकार कर लिया कि, "मनुष्य भले और बुरे का ज्ञान पाकर हम में से एक के समान हो गया है।" फिर भी, सर्प ने आधा सच कहा, बहुत बातों की प्रतिज्ञा की पर दिया कम। उनकी आंखें सचमुच खुल गईं और वे कुछ जान गए थे, परन्तु केवल इतना कि वे नंगे हैं। उन्होंने भले और बुरे को अनुभव से जाना, परन्तु उनमें दोष-भाव के संज्ञान के कारण वे परमेश्वर की उपस्थिति में आने से भयभीत हो गए; वे बुराई के गुलाम बन गए हैं। और भले ही उनका भौतिक अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ फिर भी उन्हें पवित्रस्थान की वाटिका और परमेश्वर की उपस्थिति दोनों से निकाल दिया गया। अपने जीवन स्रोत से कटकर और जीवन के वृक्ष से दूर होकर वे मृतकों के संसार में हैं। अदन के बाहर उन्होंने जो अनुभव किया वह परमेश्वर द्वारा नियत जीवन नहीं था, बल्कि आत्मिक मृत्यु थी।

3:6 जब स्त्री ने देखा। वाटिका के अन्य सभी वृक्षों के समान ही भले और बुरे के ज्ञान का वृक्ष भी "देखने में मनोहर और खाने के लिये अच्छा था" (2:9)। विडम्बना यह है कि सर्प ने स्त्री को किसी प्रकार अनुमति प्राप्त वृक्षों से असन्तुष्ट कर दिया, और उसकी अभिलाषा इस भले और बुरे के ज्ञान के वृक्ष पर केन्द्रित कर दी। इस वृक्ष का हव्वा के लिए घातक सम्मोहन यह है कि वह, ऊपरी तौर पर, **बुद्धिमान बनाने के लिए चाहने योग्य** है (2:17 पर टिप्पणी देखें), किन्तु वैसा बुद्धिमान नहीं जैसा "परमेश्वर का भय मानने" से बना जाता है (नीति. 1:7; 9:10)। **उसने उसका फल तोड़कर खाया और साथ ही साथ अपने पति को भी दिया।** यह तथ्य कि आदम "उसके साथ" था और उसने जानबूझकर परमेश्वर द्वारा वर्जित फल **खाया,** इस ओर संकेत करता है कि आदम का पाप परमेश्वर के विरुद्ध स्वैच्छिक अवज्ञा और निगरानी करने या "रक्षा करने" की अपनी ईश्वर प्रदत्त जिम्मेदारियों के निर्वहन में असफलता है (उत्प. 2:15) यह जिम्मेदारी वाटिका और स्त्री दोनों के प्रति थी जिसे परमेश्वर ने "उपयुक्त सहायक" के रूप में उसके लिये सृजा था (2:18, 20)। आदम के पाप के विनाशकारी प्रभावों या परिणामों को अत्यधिक बल देकर नहीं बताया जा सकता, जिसका नतीजा मानवजाति का पाप में पतन, सभी प्रकार के पापों का आरम्भ, पीड़ाएँ और दुख तकलीफें, तथा साथ ही मानवजाति के लिये शारीरिक और आत्मिक मृत्यु इत्यादि हुआ।

3:7-13 फल खाने के कारण इस दम्पति में रूपान्तरण हुआ, पर बेहतर होने के लिये नहीं। अब अपने नंगेपन के कारण लज्जित होकर (तुल. 2:25) उन्होंने स्वयं को ढांकने का प्रयत्न किया। प्रभु परमेश्वर की उपस्थिति के संज्ञान के कारण वे छिप गए। जब परमेश्वर ने उनसे भले और बुरे का ज्ञान देनेवाले वृक्ष के बारे में पूछा, तब पुरुष ने स्त्री पर, और बदले में स्त्री ने सर्प पर दोष लगाया।

3:9 तब यहोवा परमेश्वर ने पुकारकर आदम से पूछा, "तू कहाँ है?" इब्रानी में शब्द "आदम" और "तू" दोनों एकवचन में हैं। इस प्रकार, परमेश्वर जो कुछ हुआ उसके लिए मुख्य रूप में आदम को जिम्मेदार मानते हुए सबसे पहले उसी से प्रश्न करता है, क्योंकि वह पति-पत्नी के सम्बन्धों में प्रतिनिधि (या, "सिर") है और यह पाप में पतन से पहले निर्धारित किया गया था (2:15-16 की टिप्पणी देखें)।

3:14-15 परमेश्वर ने सबसे पहले सर्प को सम्बोधित किया। वचन 1 में सर्प को "सबसे धूर्त पशु" (इब्रा. *अरूम*) घोषित किया गया था; अब परमेश्वर उसे सबसे अधिक **शापित** (इब्रा. *अरूर*) घोषित करता है। स्त्री को उकसाने के लिए अभ्यारोपित किए जाने के कारण अब आगे सर्प को तिरस्कार की दृष्टि से देखा जायेगा। सर्प के **पेट के बल** चलने और **मिट्टी** चाटने के द्वारा यह बात अक्षरश: और आलंकारिक दोनों ही रूप में व्यक्त की गई है। स्त्री को धोखा देने के कारण सर्प की स्त्री के साथ सदैव शत्रुता रहेगी, और यह उनके **वंश** में भी चलती रहेगी।

15 और मैं तेरे और इस स्त्री के बीच में,
तथा तेरे वंश[1] और [g]इसके वंश के बीच में, बैर उत्पन्न करूंगा:
[h]वह तेरे सिर को कुचलेगा,
और तू उसकी एड़ी को डसेगा।"
16 स्त्री से उसने कहा,
"मैं तेरी प्रसव-पीड़ा को अधिक बढ़ाऊंगा।
तू [i]पीड़ा में ही बच्चे उत्पन्न करेगी,
फिर भी [j]तेरी लालसा तेरे पति के लिए होगी,
और वह तुझ पर [k]प्रभुता करेगा।"
17 तब आदम से उसने कहा,
"क्योंकि तूने अपनी पत्नी की बात मानकर
उस वृक्ष का फल खाया
[l]जिसके लिए मैंने आज्ञा देकर कहा था
कि तू उसमें से न खाना,
इसलिए [m]भूमि तेरे कारण शापित है।
तू उसकी उपज जीवन भर [n]कठिन परिश्रम के साथ खाया करेगा।

[1]इब्रानी *बीज;* इसी प्रकार सम्पूर्ण उत्पत्ति की पुस्तक में

15 [g]यशा. 7:14; मीका 5:3; मत्ती. 1:23, 25; लूका 1:34, 35; गला. 4:4; 1 तीमु. 2:15 [h]रोमि. 16:20; इब्रा. 2:14; प्रका. 20:1-3, 10
16 [i][यूह. 16:21] [j]अध्या. 4:7; श्रेष्ठ. 7:10 [k]1 कुरि.11:3; 14:34; इफि. 5:22-24; कुलु. 3:18; 1 तीमु. 2:11, 12; तीतु. 2:5; 1 पत. 3:1, 5, 6
17 [l]अध्या. 2:17 [m]अध्या. 5:29; [रोमि. 8:20-22] [n]सभो. 2:22, 23

3:15 यद्यपि बहुत से आधुनिक टीकाकार इस भाग में दर्शाये गए शाप को मनुष्यों और सर्पों के बीच स्वाभाविक शत्रुता की केवल अभिव्यक्ति या वर्णन मानते हैं, फिर भी, परम्परागत रूप में समझा जाता है कि यह स्त्री के भविष्य में होने वाले किसी वंशज के द्वारा सर्प को परास्त करने का संकेत है, और यह भावार्थ शब्दों और सन्दर्भ के परिप्रेक्ष्य में सही बैठता है। सर्प का सिर कुचलने के द्वारा उसकी पराजय को व्यक्त किया गया है, जो कि हव्वा के वंशज की एड़ी को डसने की अपेक्षा अधिक गम्भीर है। इस कारण वचन 15 को "प्रोटोइवेंजेलियम" अर्थात सुसमाचार की प्रथम उद्घोषणा के रूप में अंकित किया गया है। जैसा यह वृतान्त स्वयं दर्शाता है, अर्थात सर्प की बोलने की क्षमता और बुरी बातें जो उसने कहीं, उसे देखते हुए इस व्याख्या में ज़रूरी है कि सर्प को मात्र सर्प से कहीं बढ़कर देखा जाए। यद्यपि यह अध्याय स्पष्ट रूप में सर्प की पहचान शैतान के रूप में नहीं करता, फिर भी, ऐसी पहचान करना न्याय संगत निष्कर्ष है और यही है जिसे प्रेरित यूहन्ना प्रका. 12:9 और 20:2 में स्पष्ट रूप में दर्शन में देखता है। स्त्री के **वंश** का मूल भाव उत्पत्ति 4:25 में शेत के जन्म के समय पुनः महत्त्व पाता है; बाद में उत्पत्ति की शेष पुस्तक शेत की एकमात्र वंशावली के साथ आगे बढ़ती है और अवलोकन करती है कि अन्त में उसमें एक राजा जन्म लेगा जिसमें पृथ्वी की समस्त जातियाँ आशीषित होंगी (परिचय: उद्धार के इतिहास का सारांश देखें)। **वह तेरे सिर को कुचलेगा और तू उसकी एड़ी को डसेगा।** कुछ व्याख्याकारों ने सुझाया है कि शब्द "वह" और "उसकी" का अभिप्राय एक विशेष वंश से है। बाइबल की विस्तृत रूपरेखा में यह आशा यीशु मसीह में पूर्ण होती है जिसे नए नियम में स्पष्ट रूप में शैतान पर जय पाते हुए दिखाया गया है (इब्रा. 2:14; 1 यूह. 3:8; तुल. मत्ती 12:29; मर. 1:24; लूका 10:18; यूह. 12:31; 16:11; 1 कुरि. 15:24; कुलु. 2:15), जबकि उसी समय वह स्वयं भी कुचला जा रहा है।
3:16 स्त्री को आज्ञाउल्लंघन के पाप का दण्ड देते हुए परमेश्वर घोषणा करता है कि वह प्रसव में **पीड़ा** (इब्रा. *इट्स्साबोन*) सहेगी। यह स्त्री के व्यक्तित्व की विशिष्टता को प्रभावित करता है क्योंकि वह पृथ्वी पर "जीवित सब मनुष्यों की आदिमाता है" (व. 20)। **तेरी लालसा तेरे पति के लिए होगी, और वह तुझ पर प्रभुता करेगा।** प्रभु की ओर से कहे गए ये शब्द स्त्री और पुरुष के बीच वैवाहिक सम्बन्धों में नेतृत्व के संघर्ष की ओर संकेत करते हैं। मनुष्य के पाप में पतन के पूर्व परमेश्वर द्वारा निर्धारित पति का नेतृत्व और स्त्री का पूरक बनना अब पाप के कारण अत्यधिक क्षतिग्रस्त और तोड़मरोड़ का शिकार बन चुका है। यह विशेषकर स्त्री के लिये टकराव की अभिलाषा और पति की ओर से रोबदार प्रभुता की अभिलाषा बन जाता है। यहाँ इब्रानी शब्द (*टेशूकाह*) जिसका अनुवाद "लालसा" किया गया है पुराने नियम में विरले ही मिलता है। पर यह शब्द 4:7 में फिर से एक कथन में आता है जो 3:16 के साथ निकट सादृश्य रखता है—अर्थात जहाँ पर परमेश्वर कैन द्वारा उसके भाई हाबिल की हत्या से कुछ ही पहले कैन से कहता है कि, "पाप तेरी लालसा करता है" (अर्थात, कैन पर प्रभुता करने के लिए) और यह कि कैन को "उस पर प्रभुता करना है" (जो अपने भाई की हत्या करके ऐसा करने में तुरन्त असफल हो जाता है, जैसा 4:8 में लिखा है)। इसी प्रकार, आदम और हव्वा के परमेश्वर के प्रति विद्रोह करने के मूल पाप के अविरत परिणाम उनके सम्बन्धों में विनाशकारी नतीजे ले आएँगे: (1) हव्वा में यह पापमय "लालसा" रहेगी कि वह आदम का विरोध करे और उस पर नेतृत्व का प्रयास करे, और परमेश्वर द्वारा विवाह में आदम के लिये निर्धारित नेतृत्व की योजना को उलट दे। (2) परन्तु आदम भी पाप में पतन से पूर्व परमेश्वर द्वारा नियत नेतृत्व, देखभाल और पत्नी की परवाह करने की भूमिका का परित्याग करेगा और इसे हव्वा पर "प्रभुता" करने की अपनी पापमय और बिगड़ी अभिलाषा के साथ बदल देगा। इस प्रकार, परमेश्वर के विरुद्ध आदम और हव्वा के बलवा करने के परिणामों में सर्वाधिक दुखद परिणाम विवाह में पति और पत्नी के सम्बन्धों में लगातार चलने वाला टकराव है, जिनका मूल परमेश्वर द्वारा विवाह में उन्हें दी गई भूमिकाओं और जिम्मेदारियों के विरुद्ध बलवा करने का उनका पापमय व्यवहार है। (मसीह के उद्धार के कार्य पर आधारित विवाह की नए नियम में अवधारणा पर इफिसियों 5:21-32 की टिप्पणी देखें)।
3:17-19 परमेश्वर के द्वारा पुरुष को दिए गए दण्ड में उस मिट्टी के साथ उसका सम्बन्ध शामिल है जिससे वह सृजा गया था (2:5-7 पर टिप्पणी देखें)। क्योंकि उसने वह खाया जो उसके लिये वर्जित था, इसलिए भविष्य में उसे खाने के लिये संघर्ष करना होगा। परमेश्वर द्वारा वाटिका में भरपूर भोजन दिए जाने की पृष्ठभूमि में, यह दण्ड परमेश्वर के असन्तोष को व्यक्त करता है। आदम अब आगे वाटिका की भरपूरी का आनन्द नहीं ले पाएगा, परन्तु जिस भूमि में से उसे बनाया गया था, अब उसे उसमें परिश्रम करना होगा (3:23; 2:8-9 पर टिप्पणी देखें)। काम करना अपने आप मे दण्ड नहीं है (तुल. 2:15), बल्कि कठिनाई और निराशा है (अर्थात, "पीड़ा," इब्रानी *इट्स्साबोन*, तुल. 3:16) जो मनुष्य के कठोर परिश्रम के साथ बनी

18 वह तेरे लिए कांटे और ऊंटकटारे उगाएगी,
और तू खेत का साग-पात ही खाया करेगा।
19 तू अपने माथे के पसीने की
रोटी खाया करेगा,
और अन्त में मिट्टी में मिल जाएगा,
क्योंकि तू उसी में से निकाला गया है।
[o]तू मिट्टी तो है,
अत: [p]मिट्टी में फिर मिल जाएगा।"

19 [o]अध्या. 2:7; भज. 103:14 [p]अय्यू. 34:15; भज. 104:29; सभो. 3:20; 12:7; रोमि. 5:12
22 [q]व. 5 [r]अध्या. 2:9
23 [s]अध्या. 2:5
24 [t]भज. 18:10; 104:4; इब्रा. 1:7; [निर्ग. 25:18-22; यहे. 28:11-16]

वाटिका से निकाला जाना

20 तब आदम ने अपनी पत्नी का नाम हव्वा रखा, क्योंकि पृथ्वी पर जीवित सब मनुष्यों की आदिमाता वही हुई।[1]
21 और यहोवा परमेश्वर ने आदम और उसकी पत्नी के लिए चमड़े के वस्त्र बनाकर उनको पहना दिए।

22 तब यहोवा परमेश्वर ने कहा, [q]"देखो, यह मनुष्य भले और बुरे का ज्ञान पाकर हम में से एक के समान हो गया है। अब ऐसा न हो कि वह अपना हाथ बढ़ाकर जीवन के वृक्ष का फल भी [r]तोड़कर खा ले और सदा जीवित रहे"—
23 इसलिए यहोवा परमेश्वर ने उसे अदन की वाटिका से बाहर निकाल दिया कि उसी [s]भूमि पर खेती करे जिसमें से वह बनाया गया था। 24 अत: उसने आदम को बाहर निकाल दिया तथा जीवन के वृक्ष के मार्ग की रक्षा करने के लिए अदन के बगीचे के पूर्व की ओर [t]करूबों को और चारों ओर घूमने वाली ज्वालामय तलवार को नियुक्त कर दिया।

कैन और हाबिल

4 आदम अपनी पत्नी हव्वा के पास गया। वह गर्भवती हुई और कैन को जन्म देकर उसने कहा, "मैंने यहोवा की कृपा से एक बालक पाया[2] है।" 2 फिर उसके भाई हाबिल को भी हव्वा ने जन्म दिया। हाबिल तो भेड़-बकरियों

[1] *हव्वा* इब्रानी के जीवनदात्री के शब्द के समान लगता है और *जीवितों* के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्द से मेल खाता है
[2] *कैन* शब्द *पाया* के लिए प्रयुक्त होने वाले इब्रानी शब्द जैसा सुनाई देता है

रहेगी। यह कहना कि **भूमि शापित** है (इब्रा. *अरार*, व. 17) और वह तेरे लिए कांटे और ऊँटकटारे उगाएगी (व. 18) दर्शाता है कि अदन की वाटिका में देखी गयी भरपूर उत्पादकता अब आगे नहीं मिलेगी। इस दण्ड की बुनियाद मनुष्यों और प्रकृति के बीच कभी विद्यमान रहे मूल सम्बन्ध में आई दरार है।
3:19 आगे, मनुष्य की देह **मिट्टी में मिल जाएगी** (व. 19), अर्थात वह मरेगी (और यह सृजन के मूल क्रम में सत्य नहीं था; तुल. रोमि. 5:12)। इसी कारण, बाइबल उस समय की प्रतीक्षा में है जब प्रकृति मनुष्य के पाप के परिणामों से मुक्त की जाएगी, अर्थात प्रकृति भविष्य में दण्ड का मैदान नहीं बनेगी, और अन्त में उसका प्रबन्धन महिमा प्राप्त मनुष्य करेंगे और वह अपनी भरपूर उत्पादकता देगी (रोमि. 8:19-22)।
3:20-21 परमेश्वर द्वारा सर्प, स्त्री और पुरुष को दण्ड के वचन कहने के तुरन्त बाद दो बातें होती हैं जो सम्भवत: आशा के एक संज्ञान को व्यक्त करती हैं। प्रथम, पुरुष अपनी पत्नी का नाम **हव्वा** रखता है (व. 20), जिसका अर्थ है "जीवनदायी" (एच.एस.बी. का फुटनोट देखें)। दूसरा, परमेश्वर ने चमड़े के वस्त्र बनाकर दम्पति को पहना दिए (व. 21) यद्यपि यह अन्तिम कार्य दर्शाता है कि मानव दम्पति परमेश्वर के सामने निर्वस्त्र होने के कारण लज्जित है, फिर भी एक भाव-प्रदर्शन के रूप में यह दर्शाता है कि परमेश्वर अब भी उनकी अर्थात अपने सृजे प्राणियों की परवाह करता है। क्योंकि परमेश्वर आदम-हव्वा को पहनाने के लिए **चमड़े के वस्त्र** का प्रयोजन करता है, जो की उनकी नग्नता का ढांपने के लिए एक पशु को मारे जाने की आवश्यकता को दर्शाता है, इस कारण बहुत से लोग इसमें एक समानता पाते हैं (1) परमेश्वर ने बाद में मूसा के नेतृत्व में इस्राएलियों के बीच पाप के प्रायश्चित के लिए पशु बलि करने का तंत्र स्थापित किया और (2) अन्त में पाप के लिए प्रायश्चित्त के रूप में मसीह की बलिदान रूपी मृत्यु।
3:22-24 इस दम्पति को **अदन की वाटिका से बाहर निकाल दिया** जाता है। वचन 22 में परमेश्वर एक वाक्य का आरम्भ करता है और उसे पूरा किए बिना बात रोक देता है—मनुष्य का (अपनी पापमय दशा में) **सदा जीवित** रहना एक असहनीय विचार है, और परमेश्वर को बिना समय गंवाए इसे रोकना होगा ("इसीलिए यहोवा परमेश्वर ने उसे वाटिका से बाहर निकाल दिया")। इस प्रकार **जीवन का वृक्ष** सम्भवत: किसी रूप में व्यक्ति की नैतिक दशा की पुष्टि करता है (तुल. नीति. 3:18; 11:30; 13:12; प्रका. 2:7; 22:2, 14, 19)। उत्पत्ति 2:15 के अनुसार मनुष्य को वाटिका में इसलिए रखा गया था ताकि वह बागवानी करे और उसकी देखभाल करे। वाटिका से बाहर मनुष्य को भूमि पर खेती करना था, परन्तु वाटिका की देखभाल और सुरक्षा करने का काम अब एक **करूब** को सौंप दिया गया (3:24)। स्वयं को सर्प की बातों के प्रभाव के अधीन करने के द्वारा यह दम्पति वाटिका की रक्षा के अपने याजकीय कर्तव्य में असफल हो गया। परिणाम यह हुआ कि उनसे याजकीय पद ले लिया गया और उन्हें पवित्र स्थान से बाहर निकाल दिया गया। करुबों को **वाटिका के पूर्व की ओर** नियुक्त करना निवास स्थान और मन्दिर में दर्शाया गया है जहाँ की संरचना और वस्तुओं की व्यवस्था में करूबों का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है (पृ.184 पर वाचा का सन्दूक देखें)।
4:1-26 *आदम और हव्वा के पुत्र।* यह अध्याय मानवजाति को पाप में और अधिक गहरा डूबते हुए दिखाता है जब कैन अपने भाई की हत्या करता है और उसका वंशज लेमेक विवेक से काम न लेते हुए बदला लेता है। यद्यपि उन्हें अदन की वाटिका से बाहर निकाला गया है, तौभी आदम और हव्वा के परमेश्वर की सहायता से दो पुत्र उत्पन्न होते हैं। उन्हीं पर उस वंश के विषय में आशा स्थिर हो जाती है जो सर्प पर जय पाएगा। परन्तु जब कैन असंवेदनशीलता से अपने धर्मी भाई हाबिल की हत्या कर देता है, तब बुराई की जीत होते हुए प्रतीत होती है। कैन के वंशज इस चलन को बदल देंगे, इस विषय में कोई भी आशा तब समाप्त हो जाती है जब लेमेक इस बात पर घमण्ड करता है कि उसने एक पुरुष की हत्या केवल इसलिये की है क्योंकि उसने उसे चोट पहुँचाई थी। ऐसी पृष्ठभूमि के प्रतिकूल, हाबिल का स्थान लेने शेत के जन्म की संक्षिप्त उद्घोषणा एक नई आशा को जन्म देती है।

अध्याय 4
3[u]लैव्य. 2:12; गिन. 18:12
4[v]निर्ग. 13:12; गिन. 18:17; नीति. 3:9 [w]इब्रा. 11:4
5[x][नीति. 21:27]
7[y]सभो. 8:12, 13; यशा. 3:10, 11; रोमि. 2:6-11 [z]अध्या. 3:16
8[a]मत्ती. 23:35; इब्रा. 12:24; 1 यूह. 3:12; यहू. 11
9[b]यूह. 8:44
10[c]इब्रा. 12:24; [प्रका. 6:10]
11[d]व्यव. 27:24; [गिन. 35:33]
13[e]अध्या. 19:15
14[f]अय्यू. 15:20-24 [g]2 राजा. 24:20; भज. 51:11; 143:7; यिर्म. 52:3 [h]अध्या. 9:6; गिन. 35:19
15[i]भज. 79:12 [j]यहे. 9:4, 6; प्रका. 14:9, 11]

का चरवाहा बना, परन्तु कैन भूमि पर खेती करने वाला किसान बना। 3कुछ दिनों के पश्चात ऐसा हुआ कि कैन अपनी [u]भूमि की उपज में से यहोवा के लिए भेंट लाया। 4और हाबिल ने भी अपनी भेड़-बकरियों के [v]पहलौठों में से कुछ को चर्बी सहित, भेंट चढ़ाया। तब यहोवा ने हाबिल और उसकी भेंट को तो [w]ग्रहण किया, 5परन्तु [x]कैन और उसकी भेंट को उसने ग्रहण नहीं किया। तब कैन अति क्रोधित हुआ और उसका मुंह उतर गया। 6और यहोवा ने कैन से कहा, "तू क्यों क्रोधित है? और तेरा मुंह क्यों उतरा हुआ है? 7[y]यदि तू भला करे तो क्या तू ग्रहण न किया जाएगा?[1] पर यदि तू भला न करे तो पाप द्वार पर दुबका बैठा है और वह तेरी [z]लालसा करता है, परन्तु तुझे उस पर प्रभुता करनी है।"

8तब कैन ने अपने भाई हाबिल से बात की,[2] और जब वे मैदान में थे तो ऐसा हुआ कि कैन ने लपक कर अपने भाई हाबिल को [a]मार डाला। 9तब यहोवा ने कैन से पूछा, "तेरा भाई हाबिल कहां है?" और उसने कहा, [b]"मैं क्या जानूँ? क्या मैं अपने भाई का रखवाला हूँ?" 10और उसने कहा, "तूने क्या किया है? तेरे भाई का लहू भूमि से [c]चिल्लाकर मेरी दुहाई दे रहा है। 11और अब [d]तू उस भूमि की ओर से शापित है जिसने तेरे हाथ से तेरे भाई का लहू पीने के लिए अपना मुंह खोला है। 12जब तू भूमि पर खेती करेगा तो वह तुझे अपनी पूरी उपज न देगी; तू पृथ्वी पर आवारा और भगोड़ा होगा।" 13तब कैन ने यहोवा से कहा, "मेरा [e]दण्ड सहने से बाहर है! 14देख, [f]तूने तो आज मुझे भूमि पर से खदेड़ दिया है और मैं [g]तेरी उपस्थिति से भी हटा दिया जाऊंगा और पृथ्वी पर आवारा और भगोड़ा रहूंगा और ऐसा होगा कि [h]जो कोई मुझे पाएगा, मुझे मार डालेगा।" 15अतः यहोवा ने उस से कहा, "इस कारण जो कोई कैन को घात करेगा उस से [i]सात गुणा बदला लिया जाएगा।" और यहोवा ने कैन के लिए [j]एक चिह्न ठहराया, ऐसा न हो कि कोई उसे पाकर मार डाले।

[1]इब्रानी *क्या* [तेरा मुख] *ऊँचा न किया जाएगा?* [2]इब्रानी; सामरी, सेप्टुआजिण्ट, सीरियक, वल्गेट में यह वाक्यांश जोड़ा गया है *आओ हम बाहर मैदान में चलें*

4:1 जब **कैन** का जन्म हुआ तब हव्वा के द्वारा यहोवा की **कृपा** का उल्लेख करना आशा के बोध को सूचित करता है। स्त्री के वंश द्वारा सर्प को पराजित करना अभी तक बाकी था।

4:2-5 यद्यपि कैन और हाबिल के व्यवसाय भिन्न-भिन्न थे और उन्होंने परमेश्वर को भिन्न-भिन्न प्रकार की भेंटें चढ़ाई थीं, फिर भी इस वृतान्त की रचना चरवाहों को किसानों से बेहतर साबित करने या पशुबलियों को अन्य बलियों से श्रेष्ठ बताने के लिए नहीं की गई है। परमेश्वर ने क्यों **हाबिल और उसकी भेंट को ग्रहण किया,** परन्तु कैन और उसकी भेंट को नहीं, यह समझाने का एक तरीका यह हो सकता है कि हाबिल के द्वारा चढ़ाई गई भेंट जो कि **भेड़-बकरियों के पहलौठों** में से थी, और अधिक कीमती है, क्योंकि यह बड़ी भक्ति को अभिव्यक्त करती है। उनमें अन्तर दर्शाने का दूसरा तरीका है यह समझना कि दोनों ही बलिदान बाद के दिनों में लेवीय व्यवस्था (तंत्र) में मान्यता प्राप्त बलिदान थे: कैन की भेंट **भूमि की उपज** थी (व. 3) तुल. व्यव. 26:2 (पवित्र या अलग किए जाने की भेंट) और हाबिल की भेंट भेड़ बकरियों के पहलौठों की भेंट थी, तुल. व्यव. 15:19-23 (यह एक प्रकार की मेल बलि है अर्थात परमेश्वर की उपस्थिति में भोजन)। परन्तु बाइबल में कहीं भी यह विचार नहीं है कि बलियाँ अपने आप आशीष लाती हैं, कि मानो आराधक का विश्वास और मन का टूटापन महत्त्व नहीं रखता; कैन के हृदय की बुराई अन्त में अपने भाई से प्रतिशोध और परमेश्वर के प्रश्नों के अभद्र उत्तरों के द्वारा, शेष वृतान्त में प्रकट हो जाती है। नए नियम के बहुत से पाठों में इस वृतान्त से वैध निष्कर्ष निकाले गए हैं जैसे कि कैन के हृदय की बुराई उसके बुरे कामों से प्रकट है, जबकि हाबिल के धार्मिकता के काम उसके हृदय की धर्मपरायणता को दर्शाते हैं (1 यूह. 3:12); और यह कि हाबिल ने अपना बलिदान विश्वास के साथ चढ़ाया और इस कारण वह धर्मी गिना गया (इब्रा. 11:4)।

4:6-7 परमेश्वर के वचन कैन को भलाई करने की चुनौती देते हैं। उसमें अब भी मन फिराने की सम्भावना है, निस्सन्देह परमेश्वर की सहायता से, ताकि वह परमेश्वर को प्रसन्न कर सके। किन्तु ऐसा करने में सफल होने के लिये उसे **पाप** की प्रभुता पर जयवन्त होना होगा, यहाँ पाप को एक वनपशु बताया गया है जो कैन को चीर-फाड़ने की ताक में है (तुल. 3:16 पर टिप्पणी देखें)।

4:8 हाबिल को घात किए जाने का संक्षिप्त विवरण कैन के कार्य की निर्ममता दर्शाता है। ईर्ष्या और सम्भवतः परमेश्वर के प्रति क्रोध ने मिलकर उसे अपने ही भाई की निर्दयता से हत्या के लिये प्रेरित किया। द्वेष भाव से की गयी इस हत्या की जघन्यता प्रकट करती है कि पाप ने कैन पर प्रभुता कर ली है।

4:9 क्या मैं अपने भाई का रखवाला हूं? जब परमेश्वर ने कैन के अपराध का सामना किया तब उसके हृदय की निर्ममता के कारण उसने अपने भाई के विषय में कोई भी जानकारी होने से इनकार कर दिया। कैन ने जरा भी दुख का संकेत नहीं दिया।

4:10-12 कैन का दण्ड उसके अपराध से जुड़ा है। अब वह आगे भूमि पर खेती नहीं कर पायेगा (व. 11-12) क्योंकि उसके भाई का लहू **भूमि से** परमेश्वर की दुहाई दे रहा था (व. 10)। कैन का दण्ड मनुष्य और भूमि के बीच की दूरी को और भी बढ़ा देता है जिसे 3:17-18 में पहले ही बताया गया था। इन न्याय दण्डों की बुनियाद एक सिद्धान्त है जो पूरे पवित्रशास्त्र में प्रवाहित होता है : मनुष्य के पाप पृथ्वी की उर्वरता (उत्पादकता) को प्रभावित करता है। जबकि परमेश्वर का अभिप्राय है कि मनुष्य पृथ्वी की भरपूरी का आनन्द लें, किन्तु पाप मनुष्यों को न केवल परमेश्वर से परन्तु प्रकृति से भी दूर रखता है (3:17-19 पर टिप्पणी देखें)। उत्पत्ति 4:10 वह पृष्ठभूमि है जिसके आधार पर नये नियम में वाक्यांश "हाबिल का लहू" एक निर्दोष व्यक्ति द्वारा न्याय के लिए दुहाई के सन्दर्भ में उदाहरण स्वरूप में उपयोग किया गया है (मत्ती 23:35; लूका 11:51; इब्रा. 12:24)।

4:13-16 कैन को तुरन्त अपने दण्ड की कठोरता का अहसास होता है। उसे भूमि और परमेश्वर दोनों से अलग (परित्यक्त) कर दिया जाएगा। सुनने में यह भले ही बड़ा हल्का सा दण्ड लगता हो, पर इसका अर्थ है कि कैन **पृथ्वी पर आवारा और भगोड़ा रहेगा** (व. 14)। शेष मानव समाज से बहिष्कृत कैन को लगा कि लोग उससे भयभीत रहेंगे और जो उसे पाएगा, **मार डालेगा** (व. 14)। पाठकों को यह नहीं बताया गया कि वे लोग कौन होंगे जो उसे मार डालेंगे। कैन को दिलासा देते हुए परमेश्वर कहता है जो कोई कैन का घात करेगा उससे **सात गुणा** बदला लिया जाएगा (व. 15)। **परमेश्वर ने कैन के लिये एक चिह्न ठहराया।** विद्वानों के बहुत प्रयास करने पर भी इस चिह्न का सटीक स्वरूप अज्ञात है। अवश्य ही यह दृश्यमान चिह्न रहा होगा, पर इससे अधिक कुछ कहा नहीं जा सकता। उसके माता-पिता के समान जिन्हें वाटिका से बाहर निकाल दिया गया था, कैन भी **यहोवा**

24[k]व. 15
26[l]1 इति. 1:1; लूका.3:38

कैन के वंशज

16तब कैन, यहोवा की उपस्थिति से निकल गया, और अदन के पूरब में नोद[1] नामक देश में जाकर बस गया। **17**और
कैन अपनी पत्नी के पास गया, और वह गर्भवती हुई, तथा उसने हनोक को जन्म दिया। और कैन ने एक नगर बसाया
और अपने पुत्र के नाम पर उस नगर का नाम हनोक रखा। **18**और हनोक से ईराद उत्पन्न हुआ, और ईराद से महूयाएल
उत्पन्न हुआ, और महूयाएल से मतूशाएल, और मतूशाएल से लेमेक उत्पन्न हुआ। **19**और लेमेक ने दो स्त्रियां ब्याह लीं।
उनमें से एक का नाम आदा और दूसरी का सिल्ला था। **20**आदा ने याबाल को जन्म दिया। वह उन सब लोगों का पूर्वज
हुआ जो तम्बुओं में निवास करते और पशु पालन करते हैं। **21**और उसके भाई का नाम यूबाल था। यह उन सब लोगों
का पूर्वज हुआ जो वीणा और बांसुरी बजाते हैं। **22**और सिल्ला ने भी तूबल-कैन को जन्म दिया। वह कांसा और लोहे
की सब प्रकार की वस्तुओं को बनाने वाला हुआ। और तूबल-कैन की बहन नामा थी।
23और लेमेक ने अपनी पत्नियों से कहा:

“हे आदा और हे सिल्ला, मेरी बात सुनो,
हे लेमेक की पत्नियों, मेरे वचन पर ध्यान दो:
मैंने एक पुरुष को जिसने मुझे घायल किया था,
अर्थात एक जवान को जिसने मुझे चोट पहुंचाई थी, मार डाला है।
24 [k]यदि कैन का बदला सात गुणा
तो लेमेक का सतहत्तर गुणा चुकाया जाएगा।”

शेत का जन्म

25और आदम फिर अपनी पत्नी के पास गया, और उसने एक पुत्र को जन्म दिया और उसका नाम यह कहकर शेत
रखा: “परमेश्वर ने मेरे लिए हाबिल के बदले, जिसको कैन ने मार डाला था, एक और पुत्र दिया[2] है।” **26**और [l]शेत के

[1]*नोद* का अर्थ है भटकना [2]*शेत* शब्द *उसने नियुक्त किया* के लिए प्रयुक्त होने वाले इब्रानी शब्द जैसा सुनाई देता है

की उपस्थिति से निकाल दिया गया (अब चूंकि 17-24 में परमेश्वर का उल्लेख नहीं है, इसलिए मूसा ने भी इसी बात को माना कि कैन के वंश को भी परमेश्वर की उपस्थिति से बाहर रखा जाए)। माना जाता है कि कैन **अदन के पूरब** में आगे निकल गया (व. 16)। कैन एक प्रदेश में बस गया जिसे **नोद** नाम से जाना जाता है जिसकी भौगोलिक स्थिति अज्ञात है और जिसका इब्रानी में अर्थ “भगोड़ा” है।

4:17-24 इन वचनों में कैन के वंशजों की गिनी चुनी जानकारी दी गई है, जिसके अन्त में लेमेक का वर्णन है (व. 19) जो बड़े गर्व के साथ एक मनुष्य की हत्या करने की बात स्वीकार करता है और कहता है कि उसका बदला “सतहत्तर गुना” लिया जायेगा। कैन की सातवीं पीढ़ी में जन्मा लेमेक अपने पूर्वज के समान है परन्तु उससे भी बदतर प्रतीत होता है।

4:17 कैन अपनी पत्नी के पास गया। कैन की पत्नी के मूल के बारे में कोई जानकारी नहीं दी गई है। जैसा कि उत्पत्ति में अकसर देखा गया है, वृतान्त की सीमित और चयनित प्रकृति पाठ को अनुत्तरित प्रश्नों के साथ छोड़ देती है (परिचय: इक्कीसवीं सदी में उत्पत्ति की पुस्तक पढ़ना, देखें)। माना जा सकता है कि कैन ने अपनी ही किसी बहन से विवाह किया होगा, यही तर्कसंगत धारणा है क्योंकि समस्त मानवजाति की उत्पत्ति आदम और हव्वा से ही हुई है (बाद में व्यवस्था ऐसे विवाहों के लिये मना करती है, जैसे कि लैव्य. 18:9, जो इस समय प्रासंगिक नहीं होगा, तुल. उत्पत्ति 5:4)। **कैन ने एक नगर बसाया।** इस नगर के बनाने वाले कौन थे यह विवादित है। हालाँकि विवरण के अनुसार नगर कैन ने बनाया (इस आधार पर कि नगर का नाम उसने **अपने पुत्र के नाम पर हनोक** रखा), इब्रानी पाठ के अनुसार हनोक को निर्माणकर्ता मानने के संकेत भी मिलते हैं। यद्यपि आरम्भ के दो अध्यायों में “नगर” बनाने का विशेष उल्लेख नहीं है, फिर भी उत्पत्ति के आरम्भिक पाठकों ने आप ही अनुमान लगाया होगा कि पृथ्वी को भर देने का अर्थ है नगर या नगरों को बनाना और तब आसपास फैलते जाना अर्थात अदन से बाहर की ओर। यद्यपि यह पृथ्वी के लिए परमेश्वर की योजना (संरचना) का भाग था, तौभी उत्पत्ति की पुस्तक दर्शाती है कि कुछ लोग परमेश्वर का सन्दर्भ लिये बिना ही नगर बनाने में लग गए (विशेष तौर पर 11:1-9 देखें)।

4:18-22 कैन की पाँच पीढ़ियों के बाद **लेमेक** का जन्म होता है (व. 18), उसके तत्काल वंशज पशुपालन, संगीत और धातु कर्म से जुड़ जाते हैं जिसमें उल्लेखनीय सांस्कृतिक और तकनीकी विकास हुए (व. 20-22)। जबकि हाबिल भेड़-बकरियों का चरवाहा बना (व. 2), **याबाल** के झुण्ड में गाय, बैल, गधे, और सम्भवतः ऊँट भी थे (व. 20)। (जल-प्रलय से पूर्व की वंशावलियाँ प्राचीन निकट पूर्व में प्रमाणित होती हैं, विशेषकर मेसोपोटामिया के अभिलेखों में। सुमेरियन राजाओं की सूची में उन राजाओं के नाम हैं जिन्होंने “महा जल-प्रलय” से पूर्व वहाँ राज्य किया था। जल-प्रलय से पूर्व के राजाओं के लिये नगर बसाना एक प्रमुख उद्योग था। ऐसे सादृश्यों से बाइबल के जल-प्रलय से पूर्व विवरणों की ऐतिहासिकता की पुष्टि होती है।)

4:23-24 व. 20-22 में हुए नए विकास पर लेमेक की घमण्ड से भरी बातों की छाया है कि उसने उस एक **पुरुष** को **जिसने** उसे **घायल किया था, मार डाला है** (व. 23)। लेमेक की प्रतिक्रिया चोट के अनुपात में अधिक थी, उसने आवश्यकता से अधिक बदले की भावना दिखाई। उसका दो स्त्रियों से विवाह करना (व. 19) उसकी विकृति का परिचायक है। उसका आचरण प्रकट करता है कि कैन के वंश में उनका वर्चस्व है जिन्हें दूसरों के प्राणों की कोई चिन्ता या एकल विवाह के सिद्धान्त का सम्मान करने की कोई भावना नहीं है, जिसका 2:23-24 में समर्थन किया गया है (वहाँ टिप्पणी देखें)। बाद में व्यवस्था की पाँच पुस्तकों में हत्या के मामले के लिए दण्ड का अनुपात तय किया गया है, जीवन के बदले अधिकतम जीवन (निर्ग. 21:23)। **सात गुणा . . . सतहत्तर गुणा।** लेमेक घमण्ड करता है कि बदला लेने का उसका जुनून उसे कैन से अधिक सुरक्षित बनाता है (उत्प. 4:15) जिसे केवल परमेश्वर की ओर से सुरक्षा मिली थी। “सतहत्तर गुणा” एक चित्रात्मक कथन है जिसमें अतिशयोक्ति की चरम सीमा है; तुल. मत्ती 18:22 (एच.एस.बी. का फुटनोट देखें)।

4:25-26 इस भाग के अन्तिम वचन अचानक आदम और हव्वा की ओर पीछे ले जाते हैं ताकि उनके तीसरे पुत्र **शेत** के जन्म का समाचार दें। हव्वा

भी एक पुत्र हुआ। उसने उसका नाम [m]एनोश रखा। उसी समय से लोग [n]यहोवा का नाम लेकर प्रार्थना करने लगे।

26 [m]अध्या. 5:6 [n]भज. 116:17; सप. 3:9; जक. 13:9

आदम की वंशावली

अध्याय 5

5 यह आदम की वंशावली का लेख है। जिस दिन परमेश्वर ने मनुष्य की सृष्टि की, [o]उसने अपने ही स्वरूप में उसे
बनाया। [2]उसने नर और नारी करके उनकी सृष्टि की, और उन्हें आशीष दी, और उनकी सृष्टि के दिन उनका नाम
आदम रखा। [3]जब आदम एक सौ तीस वर्ष का था, तब उसकी समानता में, उसके स्वरूप के अनुसार, उसका एक पुत्र
उत्पन्न हुआ। उसने [p]उसका नाम शेत रखा। [4]शेत के जन्म के पश्चात [q]आदम आठ सौ वर्ष जीवित रहा तथा उसके और
भी पुत्र-पुत्रियां हुईं। [5]आदम की कुल आयु नौ सौ तीस वर्ष की हुई, [r]तब वह मर गया।

[6]जब शेत एक सौ पांच वर्ष का था, तब [s]उस से एनोश उत्पन्न हुआ। [7]एनोश के जन्म के पश्चात शेत आठ सौ सात

1 [o]अध्या. 1:26, 27 देखें
3 [p]अध्या. 4:2
4 [q]व .4–32 के लिए, 1 इति. 1:1–4 देखें; लूका. 3:36–38
5 [r]अध्या. 3:19
6 [s]अध्या. 4:26

की टिप्पणी **परमेश्वर ने मेरे लिए हाबिल के बदले . . . एक और पुत्र दिया है**, स्पष्ट रूप में 3:15 में उल्लिखित उस स्त्री के वंश की ओर संकेत है। शेत के जन्म का महत्त्व उसके तुरन्त बाद दिए अवलोकन कि **उसी समय से लोग यहोवा का नाम लेकर प्रार्थना करने लगे** से रेखांकित किया गया है, अर्थात परमेश्वर की आराधना (सार्वजनिक रूप में) करने लगे। विस्तार से नहीं बताया गया है, फिर भी यहाँ यह संकेत अवश्य है कि परमेश्वर से प्रार्थना करने का आरम्भ आदम के परिवार से हुआ।

5:1–6:8 *आदम के वंशज।* उत्पत्ति के इस खण्ड के दो भिन्न भाग हैं। जहाँ 5:1–32 अधिकांश रूप में एक वंशावली है जो कि आदम से नूह तक एक ही वंशावली का सुराग देती है जिसमें प्रत्येक पीढ़ी से केवल एक ही व्यक्ति के नाम का उल्लेख किया गया है, वही 6:1–8 में मानवीय दुष्टता में निरन्तर वृद्धि की एक विश्वव्यापी तस्वीर प्रस्तुत की गई है। इन दोनों तत्वों के मध्य जो विरोधाभास है वह मात्र व्यक्तिगत और वैश्विक के मध्य नहीं है, वरन् सबसे महत्त्वपूर्ण रूप में यह विरोधाभास धार्मिकता और बुराई के मध्य है।

5:1–32 *आदम से नूह तक वंशावली।* एक संक्षिप्त परिचय के बाद जिसमें उत्पत्ति 1 के तत्वों की प्रतिध्वनि है, यह वृतान्त आदम से नूह तक एक विशेष वंशजों की वंशरेखा पर चर्चा करता है। इस अध्याय का एक विशेष साहित्यिक प्रारूप है जो प्रत्येक पीढ़ी के विशेष व्यक्ति के उल्लेख के लिए दोहराया गया है। इस प्रारूप को इस क्रम में रखा जा सकता है: *जब 'ए' ने 'एक्स' वर्ष का जीवन पूरा किया उसने 'बी' को जन्म दिया। 'बी' को जन्म देने के बाद 'ए' 'वाय' वर्ष और जीवित रहा, और उसके अन्य पुत्र एवं पुत्रियां उत्पन्न हुए। इस प्रकार 'ए' की पूर्ण आयु (एक्स + वाय) वर्ष की हुई, तब वह मर गया* (पृ.60 पर चार्ट देखें)। अब चूंकि एक वंशावली में प्रयुक्त शब्द "उत्पन्न हुआ" का अभिप्राय "के पूर्वज को उत्पन्न किया" हो सकता है, अतः सम्भव है कि इन वंशावलियों में कुछ पीढ़ियाँ छूट गई हों; निश्चय ही साहित्यिक परम्पराएँ इसकी अनुमति देती हैं। उदाहरण के लिए, कुछ पीढ़ियाँ छूट जाने की पुष्टि असल में तब होती है जब निर्ग. 6:16–20 में मूसा की वंशावली की तुलना 1 इति. 7:23–27 में दी गई यहोशू की वंशावली से की जाती है: तुलना करने पर स्पष्ट पता चलता है कि मूसा की वंशावली संक्षिप्त में दी गई है (एज्रा 7:1–5 की 1 इति. 6:4–14 से भी तुलना करें)। उत्प. 5:3–31 में तीन स्थानों पर इस प्रारूप को संक्षिप्त विभाजित किया गया है ताकि आदम-शेत, हनोक और लेमेक-नूह के विषय में अतिरिक्त जानकारी दी जा सके। इस वृतान्त का सबसे अधिक उल्लेखनीय पहलू यह है कि उत्पत्ति में आरम्भ के लोगों की बड़ी लम्बी आयु है। (प्राचीन निकट पूर्व के अन्य वृतान्तों में आरम्भिक पीढ़ियों के लोगों की आयु और भी अधिक बताई गयी है, उदाहरण के लिए, सुमेरियन राजाओं की सूची में ऐसे राजाओं की सूची दी गई है जिन्होंने, जो कि दिलचस्प बात है, जल-प्रलय से पूर्व 28,800, 36,000 और 43,200 वर्षों तक राज्य किया था।) इस तथ्य के प्रकाश में कि वर्तमान युग (जल-प्रलय के बाद की पीढ़ियों में) के लोगों की आयु आदम से नूह तक के लोगों की आयु से बहुत कम है, अकसर प्रश्न यह किया जाता है कि 5:1–32 में दी गई इन पूर्वजों की लक्षणीय लम्बी आयु शाब्दिक अर्थ में उतनी ही मानी जानी चाहिए या फिर उनकी गणना की कोई अन्य व्याख्या है। कुछ लोगों ने सुझाव दिया है कि इन संख्याओं को सांकेतिक रूप में समझा जाना चाहिए (उदा. सम्भव है वे विभिन्न ज्योतिषीय सम्बन्धी कालखण्डों से सम्बन्धित हों); या फिर इन संख्याओं का सम्बन्ध किसी अज्ञात मानद् संकेत प्रणाली से हो, या फिर संख्याओं (वर्षों) की गणना किसी भिन्न गणना की पद्धति से की गई हो (उदा. उन्हें 5 के घटकों से विभाजित करना चाहिए, साथ ही कुछ प्रकरणों में 7 या 14 की संख्या जोड़ी जाए)। किन्तु फिर भी किसी भी लेखक ने कोई विश्वसनीय वैकल्पिक स्पष्टीकरण नहीं दिया है और किसी भी सम्भावित विकल्प की निश्चित रूप में पुष्टि नहीं की जा सकती है। परम्परागत समझ यह है कि इन संख्याओं को अक्षरशः लेना चाहिए, जिसमें अक्सर यह माना जाता है कि जल-प्रलय के बाद पृथ्वी के वातावरण (विश्व से सम्बन्धित) या फिर मानव के जीव तत्व में (या दोनों में) कुछ ऐसा परिवर्तन हुआ है जिससे आयु की दीर्घता में बड़ी गिरावट आई है और अन्त में "सामान्य" जीवन 70 से 80 वर्षों के लिये स्थिर हो गया (भज. 90:10 देखें)। इनमें से किसी भी परिस्थिति में, इन वंशावलियों का एक स्पष्ट संकेत यह है कि ये लोग (आयु चाहे जितनी भी लम्बी रही हो) वास्तव में जीवित थे, और उनकी वास्तव में मृत्यु हुई।

5:1–2 एक **लेख** का सन्दर्भ देकर उत्पत्ति 5:1–6:8 का परिचय देने वाला यह शीर्षक अन्य सभी शीर्षकों से भिन्न है (2:4 पर टिप्पणी देखें)। सम्भव है यह मिट्टी से बनी पट्टियाँ थीं जिनमें 5:1–21 और सम्भवतः 11:10–26 के लेख संरक्षित किए गए थे, हालाँकि वहाँ दिया गया स्वरूप संक्षिप्त है। इस लेख को **आदम** (इब्रा. *आदम*) का नाम दिया गया है। इसी इब्रानी शब्द का 5:1 में **मनुष्य** और 5:2 में **आदम** अनुवाद किया गया है। यह इस तथ्य को दिखाता है कि इब्रानी शब्द *आदम* का उपयोग एक विशेष नाम, और एक पुरुष के लिए लिंगसूचक संज्ञा और पुरुष और स्त्री, दोनों के लिए एक वर्गीय संज्ञा के रूप में किया जा सकता है (1:26; 1:27; 2:15–16 पर टिप्पणी देखें)। **परमेश्वर . . . के स्वरूप में** (5:1)। 1:27 पर टिप्पणी देखें।

5:3–5 वंशजों की वंशावली **आदम** से आरम्भ होती है और फिर उसके पुत्र **शेत** की ओर आगे बढ़ती है। जैसा कि 4:25 में लिखा है, शेत आदम का तीसरा पुत्र है। स्पष्ट रूप में यह वंशरेखा 4:17–18 में कैन से जुड़ी 7 पीढ़ियों की वंशावली के विकल्प के तौर पर प्रस्तुत की गई है। परन्तु जहाँ कैन की वंशरेखा सातवीं पीढ़ी में एक हत्यारे तक जाती है, फिर भी तुलनात्मक दृष्टि से शेत की वंशावली हनोक को सामने लाती है जो परमेश्वर के साथ चलता था और जिसकी मृत्यु नहीं हुई (5:22–24 की टिप्पणी देखें)। **उसकी समानता में, उसके स्वरूप के अनुसार, उसका एक पुत्र उत्पन्न हुआ**। वंशावलियों में जो सामान्य ढाँचा है उसके अनुसार यहाँ "शेत को उत्पन्न किया" यह वाक्यांश अपेक्षित है। अतिरिक्त साहित्य इस विचार को पेश करता है कि शेत आदम के सादृश्य था। जब कि यहाँ अर्थ यह निकलता है कि शेत आदम के अर्थात ईश्वरीय स्वरूप में था, किन्तु यह भी कहा जा सकता है कि उसमें उसके पिता का भी स्वरूप था। किन्तु शेत के वंशजों का चित्रण निश्चित रूप से कैन के वंशजों की तुलना में अधिक सकारात्मक है।

वर्ष जीवित रहा तथा उसके और भी पुत्र-पुत्रियां हुईं। 8और शेत की कुल आयु नौ सौ बारह वर्ष की हुई, तब वह मर गया।

9जब एनोश नब्बे वर्ष का था, तब उस से केनान उत्पन्न हुआ। 10केनान के जन्म के पश्चात एनोश आठ सौ पन्द्रह वर्ष जीवित रहा, तथा उसके और भी पुत्र-पुत्रियां हुईं। 11और एनोश की कुल आयु नौ सौ पांच वर्ष की हुई, तब वह मर गया।

12जब केनान सत्तर वर्ष का था, तब उस से महललेल उत्पन्न हुआ। 13महललेल के जन्म के पश्चात केनान आठ सौ चालीस वर्ष जीवित रहा, तथा उसके और भी पुत्र-पुत्रियां हुईं। 14और केनान की कुल आयु नौ सौ दस वर्ष की हुई, तब वह मर गया।

15जब महललेल पैंसठ वर्ष का था, तब उस से येरेद उत्पन्न हुआ। 16और येरेद के जन्म के पश्चात महललेल आठ सौ तीस वर्ष जीवित रहा, तथा उसके और भी पुत्र-पुत्रियां हुईं। 17और महललेल की कुल आयु आठ सौ पंचानबे वर्ष की हुई, तब वह मर गया।

18जब येरेद एक सौ बासठ वर्ष का था, तब [t]हनोक उस से उत्पन्न हुआ। 19हनोक के जन्म के पश्चात येरेद आठ सौ वर्ष जीवित रहा, तथा उसके और भी पुत्र-पुत्रियां हुईं। 20और येरेद की कुल आयु नौ सौ बासठ वर्ष की हुई, तब वह मर गया।

21जब हनोक पैंसठ वर्ष का था, तब उस से मतूशेलह उत्पन्न हुआ। 22मतूशेलह के जन्म के पश्चात हनोक तीन सौ वर्ष तक [u]परमेश्वर के साथ-साथ चलता रहा,[1] तथा उसके और भी पुत्र-पुत्रियां हुईं। 23अत: हनोक की कुल आयु तीन सौ पैंसठ वर्ष की हुई। 24हनोक तो [u]परमेश्वर के साथ-साथ चलता था; फिर वह लुप्त हो गया,[2] [v]क्योंकि परमेश्वर ने

[1]सेप्टुआजिण्ट *परमेश्वर को प्रसन्न करता रहा;* वचन 24 भी [2]सेप्टुआजिण्ट *फिर वह कभी नहीं मिला*

18 [t]यहू. 14
22 [u]व. 24; अध्या. 6:9; [मीका 6:8; मला. 2:6]
24 [u][ऊपरव. 22 देखें] [v]इब्रा. 11:5; [2 राजा.. 2:11]

5:22-24 वंशावलियों का सामान्य प्रारूप (व. 1-32 पर टिप्पणी देखें) इस अभिव्यक्ति के साथ बदल दिया गया है कि **हनोक तो परमेश्वर के साथ-साथ चलता था।** यह बात वचन 24 में तब और भी स्पष्ट हो जाती है जब अपेक्षित वाक्यांश "वह मर गया" के स्थान पर **वह लोप हो गया, क्योंकि परमेश्वर ने उसे उठा लिया,** इस कथन के साथ बदल दिया जाता है। इस वृतान्त में और उत्पत्ति के अन्य वृतान्तों के सन्दर्भ में (उदा. 3:8; 6:9; 17:1; 24:40; 48:15), इब्रानी क्रिया शब्द "चलता था" एक भिन्न रूप है जिसमें परमेश्वर के साथ लगातार बढ़ने वाली घनिष्ठता का अर्थ बोध है। लक्षणीय है कि इस विशेष सम्बन्ध के कारण हनोक की मृत्यु नहीं होती (तुल. एलिय्याह, 2 राजा. 2:1-12)। इस तथ्य पर विशेष प्रकाश देने की लेखक की इच्छा यह स्पष्ट करती है कि क्यों यह वंशावली उत्पत्ति 11:10-26 में दी गई वंशावली के विपरीत है जिसमें नियमित रूप में उल्लेख है कि "अमुक-अमुक की मृत्यु हो गई।"

वंशावलियां: पिता बनने की आयु और मृत्यु के समय आयु

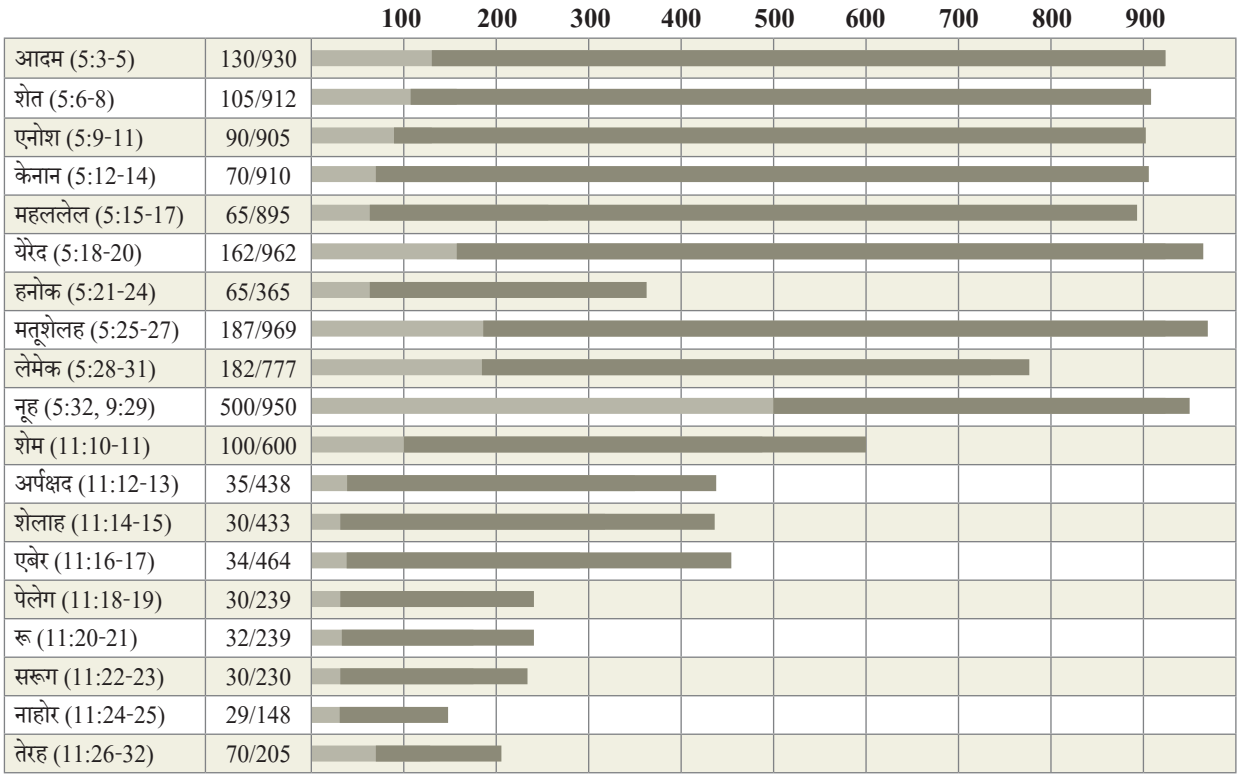

29 [w]अध्या. 3:17
32 [x]अध्या. 6:10 [y]अध्या. 10:21

अध्याय 6
3 [z]1 पत. 3:19, 20; [नहे. 9:30; गला. 5:16, 17] [a]भज. 78:39

उसे उठा लिया।

25जब मतूशेलह एक सौ सत्तासी वर्ष का था, तब उस से लेमेक उत्पन्न हुआ। 26और लेमेक के जन्म के पश्चात मतूशेलह सात सौ बयासी वर्ष जीवित रहा, तथा उसके और भी पुत्र-पुत्रियां हुईं। 27और मतूशेलह की कुल आयु नौ सौ उनहत्तर वर्ष की हुई, तब वह मर गया।

28जब लेमेक एक सौ बयासी वर्ष का था, तब उस से एक पुत्र हुआ। 29उसने यह कह कर उसका नाम नूह रखा: "यह हमारी मेहनत से और हमारे हाथों के परिश्रम से [w]जो यहोवा द्वारा शापित इस भूमि के कारण है, हमें शान्ति[1] देगा।" 30और नूह के जन्म के पश्चात लेमेक पांच सौ पंचानबे वर्ष जीवित रहा तथा उसके और भी पुत्र-पुत्रियां हुईं। 31और लेमेक की कुल आयु सात सौ सतहत्तर वर्ष की हुई, तब वह मर गया।

32और नूह पांच सौ वर्ष का हुआ, और [x]शेम, हाम, और [y]येपेत उसके पुत्र थे।

महा-जलप्रलय

6 फिर ऐसा हुआ कि जब मनुष्य पृथ्वी पर बढ़ने लगे और उनकी पुत्रियां उत्पन्न हुईं, 2तब परमेश्वर के पुत्रों ने मनुष्य की पुत्रियों को देखा कि वे सुन्दर हैं, और उन्होंने जिस-जिस को चाहा उस उस को अपनी पत्नी बना लिया। 3तब यहोवा ने कहा, [z]"मेरा आत्मा मनुष्य के साथ सदा विवाद करता न रहेगा, [a]क्योंकि वह तो शरीर है। अब उसकी आयु

[1]*नूह* शब्द *विश्राम* के लिए प्रयुक्त होने वाले इब्रानी शब्द जैसा सुनाई देता है

5:27 दी गई तिथियों के अनुसार यह निष्कर्ष निकालना सम्भव है कि **मतूशेलह** की मृत्यु जल-प्रलय आने के वर्ष में हुई।

5:28-31 इस वंशावली के प्रारूप में तब रूकावट आती है जब लेमेक के द्वारा **नूह** के नाम का स्पष्टीकरण शामिल किया जाता है। "नूह" के नाम पर की गई लेमेक की टीप्पणी (इब्रा. *नोआख़*) जिसका निश्चित अर्थ "विश्राम" (इब्रा. *नूआख़*) है, उसी से सम्बन्धित "शान्ति" (इब्रा. *नाखाम*) की अवधारणा का परिचय देती है। लेमेक आशा करता है कि नूह भूमि जोतने-बोने के **हाथों के परिश्रम** से विश्राम और मुक्ति दिलाएगा (3:17-19 देखें)। लेमेक की **सात सौ सतहत्तर** वर्ष की आयु 4:18-24 में उसके नाम और सतहत्तर गुणा बदले के सन्दर्भ में एक रोचक सम्बन्ध-सूचक बिन्दु है।

5:32 यद्यपि ऐसा दिखाई देता है कि यह वचन 3-31 में दिए वंशावली के प्रारूप को आगे बढ़ा रहा है, फिर भी तीन पुत्रों **शेम, हाम और येपेत** के नामों के साथ सूची समाप्त होती है। इसी प्रकार की समाप्ति 11:10-26 में शेम की वंशावली को निष्कर्ष तक पहुँचाती है।

6:1-8:22 जल-प्रलय का वृन्तान्त, जो गिलगमेश के महाकाव्य में शामिल है, मेसोपोटामिया के साहित्य में पाया जाता है। उसमें और बाइबल में दिए जल-प्रलय के वर्णन में बहुत सी समानताएँ हैं। उसमें उत्नापिश्तिम नामक एक मनुष्य एक जहाज़ बनाता है, उसमें पशुओं को भरता है और जल-प्रलय की वर्षा में जीवित बच निकलता है। इन दोनों वृतान्तों में कोई भी सम्बन्ध असम्भव लगता है, हालाँकि मेसोपोटामिया की जल-प्रलय की कहानी बाइबल के जल-प्रलय के वृतान्त के इतिहास को कुछ अंशों में समर्थन कर उसकी पुष्टि करती है। अर्थात अन्य साहित्यों में ऐसी कहानियों का अस्तित्व संकेत करता है कि बाइबल वास्तव में इस बड़ी घटना का स्मरण संरक्षित करती है जैसा कि मेसोपोटामिया के वृतान्त भी करते हैं। बाइबल और मेसोपोटामिया के वृतान्तों के बीच इस बात को लेकर कि किस बात ने परमेश्वर या देवी-देवताओं को जल-प्रलय लाने के लिए विवश किया, प्रमुख रूप में लक्षणीय अन्तर है।

6:1-8 *मानवजाति की दुष्टता।* अध्याय 5 में वंशजों की अति विशेष सूची के तुरन्त बाद यह संक्षिप्त अनुच्छेद आता है जिसमें समझाया गया है कि क्यों परमेश्वर ने समस्त मानवजाति को दण्ड देने जल-प्रलय भेजा। परन्तु यह अनुच्छेद इस बात की पहचान करके समाप्त होता है कि क्यों अन्य लोगों के विपरीत नूह (जिसका 5:28-32 में परिचय दिया गया है) परमेश्वर की दृष्टि में अनुग्रह पाता है।

6:1-2 मनुष्य पृथ्वी पर बढ़ने लगे। मनुष्यों की संख्या बढ़ने कि अभिप्राय को सबसे पहले परमेश्वर ने 1:28 में बताया है, जहाँ इसे अति सकारात्मक प्रकाश में प्रस्तुत किया गया और पृथ्वी के लिए परमेश्वर की योजना पूरी करने आवश्यक समझा गया है। किन्तु यहाँ पर प्रस्तुत अनुच्छेद प्रकट करता है कि परमेश्वर द्वारा आज्ञापित यह नियत कार्य पृथ्वी पर जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ दुष्टता में वृद्धि भी करता है। यह समस्या तब और भी गहरी बन जाती है जब **परमेश्वर के पुत्रों** और **मनुष्यों की पुत्रियों** के बीच यौन सम्बन्ध स्थापित होते हैं (6:2)। इन दोनों समूहों की पहचान अज्ञात है, और विभिन्न हल बताए गए हैं, हालाँकि किसी भी विचारधारा को वैश्विक समर्थन नहीं मिला है। बहुत से विद्वानों ने विचार रखा है कि "परमेश्वर के पुत्र" (1) पतित स्वर्गदूत हैं (तुल. अय्यू. 1:6; हालाँकि कुछ विद्वान मानते हैं कि ऐसा मानना मर. 12:25 के प्रतिकूल है, यद्यपि मरकुस में उन स्वर्गदूतों का सन्दर्भ है जो स्वर्ग में हैं, कृपया 2 पत. 2:4-5; यहूदा 5-6 देखें); या (2) वे तानाशाह मानवीय न्यायी या राजा थे (लेमेक के अधर्मी वंश से, सम्भवतः दुष्टात्माग्रस्त); या (3) शेत के वंश के पुरुष वंशज जो परमेश्वर के आज्ञाकारी थे (अर्थात शेत के वंश के धर्मी पुरुष जिन्होंने कैन के वंश की अधर्मी स्त्रियों से विवाह किए)। यद्यपि यह तय कर पाना कठिन है कि इनमें से कौन सी विचारधारा सही है, फिर भी इतना अवश्य स्पष्ट है कि जिस प्रकार के सम्बन्ध का यहाँ वर्णन किया गया है उसमें यौन सम्बन्धों में कुछ शोकित करने वाली विकृति शामिल थी जहाँ परमेश्वर के पुत्रों ने **देखा** और जिस किसी स्त्री को (मनुष्यों की पुत्री) चाहा, उसे परिणामों के प्रति बेपरवाह होकर अपनी **पत्नी** बना लिया। यहाँ उत्पत्ति 6:2 में प्रस्तुत घटनाक्रम (देखा . . . वे सुन्दर हैं . . . अपनी पत्नी बना लिया) मनुष्य के पाप में पतन 3:6 (देखा . . . अच्छा . . . तोड़कर खाया) के घटनाक्रम से सादृश्य रखता है। दोनों ही घटनाओं में, परमेश्वर की सृष्टि में से कुछ अच्छे का उपयोग परमेश्वर के विरुद्ध आज्ञाउल्लंघन और पापमय विद्रोह के लिए किया गया जिसके परिणाम दुखद हुए। केवल नूह इस पाप से अछूता था (1 पत. 3:19 पर टिप्पणी देखें)।

6:3 परमेश्वर उद्घोषणा करता है कि मनुष्यों के अनैतिक चाल-चलन या स्वभाव के कारण **उनकी आयु एक सौ बीस वर्ष की होगी।** वर्षों को लेकर इस संख्या के दो भावार्थ सम्भव हो सकते हैं: मनुष्य या तो 120 वर्षों से अधिक जीवित नहीं रहेंगे या फिर जल-प्रलय 120 वर्षों के बाद आएगा। हालाँकि, दूसरा भावार्थ अधिक तर्कसंगत नहीं लगता जबकि पहला भावार्थ अधिक सम्भावित है। और निष्कर्ष के रूप में यह सही होगा भले ही जल-प्रलय के बाद हुए कुछ लोगों ने (उदा. अब्राहम) 120 वर्षों से अधिक आयु का आनन्द लिया।

एक सौ बीस वर्ष की होगी।" 4उन दिनों में पृथ्वी पर नफिली[1] रहा करते थे और बाद में उस समय भी थे जब परमेश्वर के पुत्रों ने मनुष्यों की पुत्रियों के पास जाकर उनसे सन्तान उत्पन्न की। ये प्राचीन काल के शूरवीर और सुप्रसिद्ध मनुष्य थे।

5तब [b]यहोवा ने देखा कि पृथ्वी पर मनुष्य की दुष्टता बहुत बढ़ गई है, और उसके मन का प्रत्येक [c]विचार निरन्तर बुरा ही होता है। 6और [d]यहोवा पृथ्वी पर मनुष्य को बनाकर पछताया—और वह मन में अत्यन्त [e]खेदित हुआ। 7तब यहोवा ने कहा, "मैं मनुष्य को जिसकी मैंने सृष्टि की है पृथ्वी पर से मिटा डालूंगा—मनुष्य, पशु, रेंगने वाले जन्तु, आकाश के पक्षी—सबको मिटा दूंगा, क्योंकि मैं उनको बनाने से पछताता हूं।" 8परन्तु यहोवा की [f]कृपा-दृष्टि नूह पर बनी रही।

9नूह की वंशावली यह है। [g]नूह तो धर्मी और अपने समय के लोगों में [h]निर्दोष व्यक्ति था। नूह [i]परमेश्वर के साथ साथ चला करता था। 10और नूह से तीन पुत्र उत्पन्न हुए, अर्थात शेम, हाम, और येपेत।

नूह का जहाज़

11और परमेश्वर की दृष्टि में पृथ्वी भ्रष्ट हो गई थी और हिंसा से भर गई थी। 12परमेश्वर ने पृथ्वी पर [j]दृष्टि की, और देखो, वह भ्रष्ट हो गई थी, क्योंकि पृथ्वी पर [k]सब प्राणियों ने अपना-अपना चाल-चलन बिगाड़ लिया था।

13तब परमेश्वर ने नूह से कहा, [l]"मेरे सामने सब प्राणियों के अन्त करने का प्रश्न आ गया है,[2] क्योंकि पृथ्वी उनके कारण हिंसा से भर गई है; और देख, मैं उनको पृथ्वी समेत नष्ट करने पर हूं। 14तू अपने लिए गोपेर[3] की लकड़ी का एक जहाज़ बना; उस जहाज़ में कोठरियां बनाना, और उसमें भीतर-बाहर राल लगाना। 15और तू उसे इस प्रकार बनाना:

[1]या *दानव* [2]इब्रानी *मेरे सामने सब प्राणियों का अन्त आ गया है* [3]अज्ञात जाति का वृक्ष; यह शब्द इब्रानी के शब्द का लिप्यन्तरण है

5[b]भज. 14:2, 3 [c]अध्या. 8:21; अय्यू. 14:4; 15:14; भज. 51:5; यिर्म. 17:9; मत्ती. 15:19; रोमि. 3:23
6[d]1 शमू.15:11; 2 शमू. 24:16; योए. 2:13; [गिन. 23:19; 1 शमू.15:29] [e]यशा. 63:10; इफि. 4:30
8[f]अध्या. 19:19; निर्ग. 33:12, 13, 16, 17
9[g]अध्या.7:1; यहे. 14:14, 20; 2 पत.2:5 [h]अय्यू. 1:1, 8; लूका. 1:6 [i]अध्या. 5:22, 24; [इब्रा. 11:7]
12[j]भज. 14:2, 3; 53:2, 3 [k]अय्यू. 22:15–17
13[l]यहे. 7:2, 3, 6

6:4 नफिली (दानव)। इस शब्द का अर्थ अनिश्चित है। पुराने नियम में यह केवल एक अन्य स्थल गिनती 13:33 में आया है जहाँ इसका सम्बन्ध कनान में रहने वाली एक जाति से है। यदि दोनों ही अनुच्छेद एक ही जाति का वर्णन करते हैं तो उन कनानियों के प्रति अपना भय व्यक्त कर रहे हैं, जब वे उनकी बराबरी इस्राएली गुप्तचर (गिन. 13:33) और प्राचीनकाल के **शूरवीर और सुप्रसिद्ध मनुष्य** से कर रहे थे। यद्यपि इब्रानी भाषा में *नफिलीम* का अर्थ "गिरे हुए लोग" है, आरम्भिक यूनानी अनुवादकों ने उनके लिए "दानव" शब्द का उपयोग किया है। सम्भव है यह विचार गिनती 13:33 से गलती से व्युत्पन्न हुआ हो, इसलिए इस अनुच्छेद में इसे पढ़ते हुए सावधानी बरतने की आवश्यकता है। नफिली लोग बलवान या **शूरवीर** थे और इस कारण सम्भव है कि उस हिंसा में उनका अच्छा खासा योगदान रहा हो जिससे पृथ्वी भर गई थी (उत्प. 6:13 देखें)।

6:5 यह वचन विश्वस्तर पर मनुष्यों की दुष्टता की तीव्रता और विकृति का संक्षेप में वर्णन करता है।

6:6–7 यहोवा . . . पछताया . . . वह मन में अत्यन्त खेदित हुआ। इब्रानी शब्द "पछताया" (इब्रा. *नाखाम*) का अनुवाद कभी-कभी "पश्चात्ताप" और कभी कभी "दुखी या खेदित होना" किया जाता है। परमेश्वर उसकी उस सृष्टि से खेदित हुआ जिसे देखकर उसने पहले "बहुत अच्छा" कहा था (1:3) परन्तु अब वह पाप से भर चुकी है (1 शमू. 15:11; 15:29; योना 3:10 पर टिप्पणी देखें)। **पृथ्वी पर से मिटा डालूंगा**। जल-प्रलय के विस्तार के विषय पर 6:17 की टिप्पणी देखें। **मनुष्य, पशु, रेंगने वाले जन्तु, आकाश के पक्षी** सबको मिटा देने का विचार दर्शाता है कि यह परमेश्वर के रचनात्मक कार्य के एक विपरीत कार्य होगा। बाद में आए जल-प्रलय ने यही किया, क्योंकि सूखी भूमि जलमग्न हो गयी और बाद में फिर दिखाई दी जैसे उत्पत्ति 1:9 में है।

6:8 नूह को शेष मानवजाति से अलग बताया गया है। नूह के अतिरिक्त, पुराने नियम में मूसा ही एकमात्र व्यक्ति (निर्ग. 33:17) है जिस पर **यहोवा की कृपा दृष्टि बनी रही** (और सम्भवतः अब्राहम भी; उत्प. 18:3 से तुलना करें)। मूसा के बराबर माने गए, नूह को आने वाले निश्चित सर्वनाश से बचा लिया जाता है।

6:9–9:29 *नूह के वंशज।* नूह और उसके वंशजों पर केन्द्रित उत्पत्ति का यह भाग जल-प्रलय के विवरण से भरा है जिसमें पृथ्वी का नवीनीकरण होता है और यह 1:1–2:3 से मिलता-जुलता है। भले ही भूमि को मनुष्यों के गलत कामों की अशुद्धि से शुद्ध कर दिया गया है और परमेश्वर ने एक नया आरम्भ सम्भव कर दिया है, फिर भी लोगों के स्वभाव नहीं बदले हैं, जैसा कि अन्तिम संक्षिप्त भाग 9:20–28 प्रकट करता है। मनुष्य के हृदय की प्रवृत्ति अब भी बुराई (पाप) की ओर ही है।

6:9–9:19 *नूह और जल-प्रलय।* यह लम्बा वृतान्त स्मरण दिलाता है कि कैसे नूह और उसका निज परिवार जल-प्रलय से बचा लिया गया है। अध्याय 1 की प्रतिध्वनि के साथ जब पृथ्वी जल-प्रलय से बाहर आती है, तब समस्त प्रक्रिया सृष्टि का विनाश और "पुनः सृजन" करती दर्शायी गयी है, परन्तु जल-प्रलय के बाद भी समस्त सृष्टि शुद्ध या पवित्र दशा को प्राप्त नहीं करती। मानव स्वभाव नया नहीं होता है।

6:9 नूह की वंशावली यह है। उत्पत्ति का यह भाग एक नए शीर्षक से आरम्भ होता है (2:4 की टिप्पणी देखें)। नूह की व्यक्तिगत धार्मिकता दर्शाती है कि क्यों उसे आने वाले जल-प्रलय की चेतावनी दी गई। इब्रानी शब्द **निर्दोष** का अभिप्राय सिद्ध, त्रुटिरहित (आवश्यक नहीं कि पापरहित) से है। **परमेश्वर के साथ साथ चला करता था**। 5:22–24 पर टिप्पणी देखें, नूह के समान, बाद में अब्राहम से माँग की गई कि वह परमेश्वर के सम्मुख चले और सिद्ध होता जाए (17:1 देखें)। यहाँ सूचीबद्ध सकारात्मक सद्गुण पुराने नियम में विरले ही मनुष्यों से जोड़े गए हैं।

6:11–12 नूह के विपरीत, **परमेश्वर की दृष्टि में पृथ्वी भ्रष्ट थी**। ये वचन उन बातों की पुष्टि करते हैं जो व. 1–7 में पहले ही बताई गई हैं। किन्तु यहाँ विशेष बल **हिंसा** पर दिया गया है जिसने पृथ्वी को भर दिया है। यहाँ "भ्रष्ट" होने का उल्लेख पौलुस के "विनाश के दासत्व" से सम्बन्धित है (रोमि. 8:21): मनुष्यों के भ्रष्टाचार से और जब परमेश्वर उस भ्रष्टाचार को दण्ड देता है, सृष्टि को पीड़ा पहुँचती है। मूल रूप में मनुष्यों को परमेश्वर के प्रतिनिधि के रूप में पृथ्वी पर शासन करने अधिकृत किया गया था, परन्तु मनुष्य ने हिंसा और दुष्टता के साथ दूसरों पर अपना शासन थोपा, जिनमें अन्य मनुष्य और अन्य जीवित प्राणी भी शामिल हैं। निकट पूर्व के महाकाव्य गिलगमेश और अतराहसीस भी बताते हैं कि जल-प्रलय मनुष्यों को दण्ड देने भेजा गया था। हालाँकि उन कहानियों में यह मनुष्यों का अशान्ति उत्पन्न करने वाला कोलाहल था जिसने उन्हें विनाश तक पहुँचाया। उत्पत्ति में बल इस बात पर है कि परमेश्वर ने अपने सृजित मनुष्यों का सर्वनाश उनके अनैतिक आचरण के कारण किया।

6:13–17 एक लम्बे सम्बोधन में परमेश्वर नूह को एक ऐसा **जहाज़** बनने का निर्देश देता है (व. 14) जो पर्याप्त रूप में इतना बड़ा हो कि उसमें नूह का परिवार और विभिन्न प्रजातियों के जीवित प्राणी भी रह सकें।

6:15 आधुनिक नाप के अनुसार यह जहाज़ लगभग 450 फुट (140 मीटर) लम्बा, 75 फुट (23 मीटर) चौड़ा, और 45 फुट (14 मीटर) ऊँचा

17 [m]अध्या. 7:4; 2 पत.2:5
18 [n]अध्या. 9:9, 11
22 [o]इब्रा. 11:7; [निर्ग. 40:16]

अध्याय 7
1 [p]मत्ती. 24:38, 39; लूका. 17:26, 27; इब्रा. 11:7; 1 पत.3:20; 2 पत.2:5
[q]अध्या. 6:9
2 [r]अध्या. 8:20; [लैव्य. 11]
4 [s]व. 12,17; [अय्यू. 37:11-13] [t]अध्या. 6:17
5 [u]अध्या. 6:22
11 [v]अध्या. 8:2; नीति. 8:28; [आमो. 9:6] [w]अध्या. 8:2; 2 राजा.. 7:19; यशा. 24:18; मला. 3:10; [भज. 78:23]

उसकी लम्बाई तीन सौ हाथ,[1] चौड़ाई पचास हाथ, और ऊंचाई तीस हाथ हो। **16**जहाज़ में एक खिड़की बनाना और उसके एक हाथ ऊपर से छत डालना, और जहाज़ में एक ओर दरवाज़ा रखना। और उसमें पहला, दूसरा, और तीसरा खंड बनाना। **17** [m]और सुन, मैं स्वयं आकाश के नीचे के सब प्राणियों को जिनमें जीवन का श्वास है, नष्ट करने के लिए पृथ्वी पर जलप्रलय करने वाला हूं; और पृथ्वी पर जो कुछ है वह सब नष्ट हो जाएगा। **18**पर [n]मैं तेरे साथ वाचा बांधता हूं: इसलिए तू अपने पुत्रों, अपनी पत्नी और बहुओं के साथ जहाज़ में प्रवेश करना। **19**और सब जीवित प्राणियों में से तू प्रत्येक जाति के दो दो अर्थात नर और मादा अपने साथ जहाज़ में ले जाना कि वे तेरे साथ जीवित बचें। **20** प्रत्येक जाति के पक्षी और प्रत्येक जाति के पशु और भूमि पर रेंगने वाले प्रत्येक जाति के जन्तुओं का एक एक जोड़ा तेरे पास आएगा कि वे जीवित बचें। **21**और तू सब प्रकार की खाद्य-सामग्री लेकर अपने पास इकट्ठा कर लेना जो तेरे और उनके भोजन के लिए होगी।" **22**जैसी परमेश्वर ने उसे आज्ञा दी थी, [o]नूह ने ऐसा ही किया। उसने सब कुछ वैसा ही किया।

7 तब यहोवा ने नूह से कहा, [p]"तू अपने समस्त घराने सहित जहाज़ में प्रवेश कर, क्योंकि इस पीढ़ी में [q]तू ही मुझे धर्मी दिखाई देता है। **2**तू अपने साथ [r]शुद्ध पशु की प्रत्येक जाति में से नर और उसकी मादा के सात सात जोड़े[2] लेना; और जो अशुद्ध पशु हैं उनमें से एक जोड़ा लेना, अर्थात नर और उसकी मादा। **3**आकाश के पक्षियों में से भी नर और मादा के सात सात जोड़े[3] लेना कि उनका वंश सारी पृथ्वी पर बचा रहे। **4**क्योंकि सात दिन के बाद [s]मैं पृथ्वी पर चालीस दिन और चालीस रात तक जल बरसाता रहूंगा, [t]और मैं प्रत्येक प्राणी[4] को जिसे मैंने सृजा है, पृथ्वी पर से मिटा दूंगा।" **5**और यहोवा ने [u]नूह को जैसी आज्ञा दी थी, उसने सब कुछ वैसा ही किया। **6**जब जलप्रलय पृथ्वी पर आया, उस समय नूह की आयु छ: सौ वर्ष की थी। **7**तब जलप्रलय के कारण नूह ने अपने पुत्रों, अपनी पत्नी और अपनी बहुओं के साथ, जहाज़ में प्रवेश किया। **8**शुद्ध और अशुद्ध पशु-पक्षियों और भूमि पर रेंगने वाले प्रत्येक प्रकार के **9**जन्तुओं में से दो दो अर्थात नर और मादा करके नूह के साथ जहाज़ में गए, जैसी परमेश्वर ने नूह को आज्ञा दी थी। **10**तब सात दिन के पश्चात ऐसा हुआ कि प्रलय का जल पृथ्वी पर आ गया।

जलप्रलय का आरम्भ

11नूह के जीवन के छ: सौवें वर्ष के दूसरे महीने के ठीक सत्रहवें दिन गहरे जल के सब [v]सोते फूट पड़े और आकाश के [w]झरोखे खुल गए। **12**और पृथ्वी पर चालीस दिन और चालीस रात वर्षा होती रही।

13ठीक उसी दिन नूह और उसके पुत्र, शेम, हाम, और येपेत, और नूह की पत्नी, तथा उसके पुत्रों के साथ उनकी

[1]एक *हाथ* का माप लगभग 18 इंच या 45 सें.मी. होता था [2]या *शुद्ध पशु की प्रत्येक जाति में से सात पशु*
[3]या *आकाश के पक्षियों की प्रत्येक जाति में से भी सात पक्षी* [4]इब्रानी *सब कुछ जो अस्तित्व में है;* वचन 23 भी

था, और उसमें लगभग 43,000 टन (लगभग 390 लाख किलोग्राम) समाने की क्षमता थी। इसकी भीतरी क्षमता लगभग 14 लाख घन फुट (39,644 घन मीटर) थी, जिसमें जहाज की छत का क्षेत्रफल 95,700 वर्ग फुट (8,891 वर्ग मीटर) थी।

6:17 पृथ्वी पर जो कुछ है वह सब नष्ट हो जाएगा। यद्यपि परमेश्वर चाहता था कि जल-प्रलय सभी व्यक्तियों को नष्ट कर दे, और उसके कथन में विश्वस्तर की बात पर ज़ोर है, किन्तु इसका अपने आप में अर्थ आवश्यक रूप में यह नहीं है कि जल-प्रलय ने समस्त पृथ्वी को ढंक लिया था। प्राचीन काल के लोगों का भौगोलिक ज्ञान आज के लोगों की तुलना में अधिक सीमित था, इस कारण यह सम्भव है कि जल-प्रलय भले ही उनके दृष्टिकोण से विश्वव्यापी था, फिर भी उसने समस्त पृथ्वी को नहीं डुबोया था। उत्पत्ति के अनुसार बाबेल की मीनार से पहले (11:1-9 देखें) लोग पूरे संसार में नहीं फैले थे, इस कारण बहुत से अनुवादक तर्क करते हैं कि सम्भवतः एक विशाल क्षेत्रीय जल-प्रलय ही परमेश्वर के द्वारा सभी मनुष्यों का सर्वनाश करने के लिए काफी था। अभिव्यक्ति "सारी पृथ्वी" में (7:3; तुल. 8:9 "समस्त पृथ्वी") का अभिप्राय ऐसी सम्भावना से इनकार करना नहीं है; बाद में, "सारी पृथ्वी" के लोग यूसुफ के पास अन्न खरीदने आए (41:57), जिसमें "सारी पृथ्वी" का आशय भूमध्य सागर के उत्तरी तट के प्रदेशों से है। जल-प्रलय समस्त पृथ्वी पर फैला था, इस अभिमत के समर्थक पाठ में इस बात पर ध्यान देते हैं कि "उसने आकाश के नीचे के सभी ऊँचे से ऊँचे पर्वतों को भी ढंक लिया" (7:19), जल "पन्द्रह हाथ" और ऊँचा उठ गया और पहाड़ डूब गए। यदि "अरारात पर्वत" (8:4) का सम्बन्ध वर्तमान दिनों के अरारात पर्वत से मानें जो तुर्की में है (ऊँचाई 16,854 फिट या 5,137 मीटर), तो उसे ढांकने के लिये समुद्र की सतह से कम से कम 16,854 फुट ऊपर जल की आवश्यकता होगी।

6:18-22 परमेश्वर संकेत देता है कि वह नूह के साथ एक **वाचा** बाँधेगा (9:9-11; 9:12-17 की टिप्पणियाँ देखें)। जहाज़ में **सब जीवित प्राणियों में से** दो-दो को लेकर, जिनमें पक्षी, पशु और रेंगने वाले जन्तु शामिल थे, नूह ने उस परवाह और देखभाल का भाव प्रदर्शित किया जो दूसरे जीवित प्राणियों के प्रति मनुष्यों से अपेक्षित था।

7:1-5 परमेश्वर के निर्देशानुसार जहाज बनाने के बाद नूह को उसमें प्रवेश की आज्ञा दी जाती है, उस को निर्देश दिया जाता है कि वह **शुद्ध पशु की प्रत्येक जाति में से नर और उसकी मादा के सात-सात जोड़े,** और **जो अशुद्ध पशु है उनमें से एक जोड़ा अर्थात एक नर और एक मादा ले।** शुद्ध और अशुद्ध पशुओं में विभेद के लिए लैव्य. 11:1-47 और व्यव. 14:4-20 देखें। अब क्योंकि जल-प्रलय के बाद कुछ शुद्ध पशु बलि चढ़ाये जायेंगे (उत्प. 8:20 देखें) और कुछ को भोजन के रूप में खाया जायेगा (9:3 देखें), इसलिए उनके जीवित बचे रहने के लिये एक से अधिक जोड़े (प्रत्येक प्रजाति में से) जहाज में लेकर जाना आवश्यक था।

7:11-12 जल-प्रलय के वृतान्त में एक विशिष्ट लक्षण घटनाओं के कालक्रमानुसार विस्तार से दिए गए वर्णन हैं (तुल. 8:4-5, 13-14)। नूह के जीवनकाल के दौरान घटी इन घटनाओं के ठीक-ठीक दिन और महीनों को बताने के द्वारा, यह वचन इस घटना की वास्तविकता को रेखांकित करता है। **गहरे जल के सब सोते फूट पड़े और आकाश के झरोखे खुल गए** (7:11)। जल-प्रलय की तीव्रता को दर्शाने के लिए यहाँ सशक्त कल्पना या तस्वीर का सहारा लिया गया है। नीचे से और ऊपर से जल उण्डेला गया ताकि भूमि ढंक जाए। **और पृथ्वी पर चालीस दिन और चालीस रात** लगातार वर्षा **होती रही** (व. 12)।

तीनों पत्नियां, जहाज़ में गए—**14**वे तथा प्रत्येक जाति के सब बनैले पशु और प्रत्येक जाति के पालतू पशु, और पृथ्वी पर रेंगने वाले प्रत्येक जाति के जीव-जन्तु, तथा प्रत्येक जाति के सब पक्षी भी। **15**इस प्रकार सब प्राणी जिनमें जीवन का श्वास था, दो दो करके नूह के पास [x]जहाज़ में गए। **16**और जिन्होंने प्रवेश किया, [y]जैसा कि परमेश्वर ने उसे आज्ञा दी थी, वे सब प्राणियों में से नर और मादा थे। तब यहोवा ने जहाज़ को बाहर से बन्द कर दिया।

17तब चालीस दिन तक पृथ्वी पर जलप्रलय [z]होता रहा, और जल बढ़ता गया और जहाज़ ऊपर उठता गया: इस प्रकार वह पृथ्वी से ऊपर उठ गया। **18**और पृथ्वी पर जल बढ़ते बढ़ते बहुत बढ़ गया, तथा जहाज़ जल की सतह पर तैरने लगा। **19**जल पृथ्वी पर इतना अधिक बढ़ गया कि उसने आकाश के नीचे के सभी ऊंचे से ऊंचे पर्वतों को भी ढंक लिया। **20**जल पन्द्रह हाथ[1] और ऊंचा उठ गया और पहाड़ डूब गए। **21**और पृथ्वी पर चलने वाले प्राणी, क्या पक्षी, क्या पशु, क्या जंगली जानवर, और सारे कीड़े-मकोड़े जो पृथ्वी पर झुंडों में रहते हैं, और समस्त मनुष्य-जाति—[a]सब के सब नष्ट हो गए। **22**और जितने सूखी भूमि पर थे तथा [b]जिनके नथनों में जीवन का श्वास था, सब मर मिटे। **23**इस प्रकार परमेश्वर ने भूमि पर से प्रत्येक जीवित प्राणी को मिटा डाला। मनुष्य से लेकर, जानवर, रेंगने वाले जीव-जन्तु, तथा आकाश के पक्षी तक—ये सब पृथ्वी पर से मिटा दिए गए। केवल [c]नूह तथा जितने उसके साथ जहाज़ में थे, वे ही बचे। **24**और जल पृथ्वी पर एक सौ पचास दिन तक प्रबल रहा।

[1]एक *हाथ* का माप लगभग 18 इंच या 45 सें.मी. होता था

15 [x]अध्या. 6:20
16 [y]व. 2, 3
17 [z]व. 4, 12
21 [a]व. 4; अध्या. 6:13, 17;
22 [b]अध्या. 2:7
23 [c]2 पत. 2:5

7:16 जहाज के भीतर के प्राणियों की सुरक्षा मनुष्य और ईश्वर दोनों के कार्य पर निर्भर थी। **यहोवा ने जहाज़ को बाहर से बन्द कर दिया।** यहाँ परमेश्वर का व्यक्तिगत नाम "याहवेह" ("यहोवा"; 2:4 पर टिप्पणी देखें) नूह के साथ परमेश्वर के विशेष सम्बन्ध पर बल देता है।

7:17-24 यह जल-प्रलय के विनाशकारी प्रभावों का वर्णन है, जो परमेश्वर द्वारा पहले ही घोषित किए गए दण्ड को पूरा करता है। **जल पृथ्वी पर एक सौ पचास दिन तक प्रबल रहा** (व. 24)। 150 दिन, यह संख्या जिसमें वचन 12 में वर्णित वर्षा के 40 दिन भी शामिल हैं, 8:3 में दोहरायी गयी है। दोनों स्थानों में यह उस 5 माह के कालखण्ड को दर्शाती है जो 7:11 में बताए समय (जिसमें दूसरे महीने के सत्रहवें दिन जल-प्रलय का आरम्भ बताया गया है) और 8:4 में बताए गए समय के बीच का है (जब 7वें महीने के 17वें दिन जहाज एक स्थान पर टिक गया)। इसके बाद भूमि को पर्याप्त रूप में सूखने के लिये सात महीने और लगे, उसके बाद ही जो जहाज के भीतर थे, सुरक्षित रूप में बाहर आ सके (8:13-14 देखें)। जल-प्रलय की गहराई (**पहाड़ों की चोटियों से ऊपर**) के विषय पर 6:17 की टिप्पणी देखें।

जहाज़ के भीतर नूह के समय का कालक्रम

जैसा कि इस पाठ में है, तिथियों को महीने, दिन और नूह की आयु के वर्ष के अनुसार दिया गया है। इस प्रकार 2/10/600 का अर्थ है नूह की आयु के 600वें वर्ष का दूसरा महीना और उसका दसवाँ दिन। 30 दिनों का एक महीना गिना गया है। कोष्ठकों में दी गई तिथियाँ पाठ में स्पष्ट दी गई तिथियों से अनुमानित हैं।

	पवित्रशास्त्र सन्दर्भ	घटनाक्रम	तिथि	दिन
	7:4, 10	सात दिन पहले जलप्रलय की घोषणा	(10/2/600)	रविवार
जलप्रलय का प्रबल रहना : 150 दिनों तक	7:11, 13	जलप्रलय का आरम्भ; नूह और उसका परिवार जहाज में प्रवेश करते हैं	17/2/600	रविवार
	7:12	जलप्रलय 40 दिन तक प्रबल रहता है और रुक जाता है	(27/3/600)	शुक्रवार
	8:4	जलप्रलय के प्रबल रहने और समाप्त होने के कुल 150 दिन बाद जहाज अरारात पर्वतों पर जा टिकता है	17/7/600	शुक्रवार
जल का घटना : 150 दिनों तक	8:5	अन्ततः पर्वतों की चोटियाँ दिखाई देती हैं	1/10/600	बुधवार
	8:7	कौवे को बाहर छोड़ा जाता है (पर्वतों की चोटियाँ दिखने के 40 दिन पश्चात)	(10/11/600)	रविवार
	8:8	कबूतरी को बाहर छोड़ा जाता है	(17/11/600)	रविवार
	8:10	कबूतरी को दूसरी बार बाहर छोड़ा जाता है (7 दिन पश्चात); जैतून की पत्ती साथ लेकर लौटती है	(24/11/600)	रविवार
	8:12	कबूतरी को तीसरी बार छोड़ा गया (7 दिन पश्चात); वह फिर वापस नहीं लौटती है	(1/12/600)	रविवार
	8:13	जल पूर्णतः सूख जाता है; अतिरिक्त 150 दिनों के बाद	(17/12/600)	बुधवार
पृथ्वी सूखती है : 70 दिनों में	8:13	अन्ततः नूह जहाज की छत खोलता है	(1/1/601)	बुधवार
	8:14-19	पृथ्वी सूख चुकी होती है; नूह जहाज में से बाहर निकलता है	(27/2/601)	बुधवार
जहाज में बिताया पूरा समय : 370 दिन				

अध्याय 8
1[d]अध्या. 19:29; 30:22; निर्ग. 2:24; 1 शमू. 1:19
[e]निर्ग. 14:21
2[f]अध्या. 7:11
3[g]अध्या. 7:24
4[h]2 राजा.. 19:37; यशा. 37:38; यिर्म. 51:27
16[i]अध्या. 7:13
17[j]अध्या. 1:22, 28; 9:1
21[k]निर्ग. 29:18, 25, 41; लैव्य. 1:9, 13, 17; देखें यहे. 16:19; 20:41; 2 कुरि. 2:15; इफि. 5:2; फिलि. 4:18; [l]अध्या. 3:17; 6:17
[m]अध्या. 6:5; भज. 58:3; रोमि. 1:21; [मत्ती. 15:19]

महा-जलप्रलय का अन्त

8 परन्तु परमेश्वर ने नूह की तथा जितने वन-पशु और घरेलू पशु उसके साथ जहाज़ में थे उन सबकी [d]सुधि ली। और [e]परमेश्वर ने पृथ्वी पर हवा चलाई, और पानी थम गया। **2**और अथाह समुद्र के [f]स्रोत और आकाश के [f]झरोखे बन्द कर दिए गए, और आकाश से वर्षा रोक दी गई। **3**तब पृथ्वी से जल धीरे धीरे घटने लगा और [g]एक सौ पचास दिन के बीतने पर जल घट गया। **4**और सातवें महीने के सत्रहवें दिन जहाज़ [h]अरारात पर्वत पर जा टिका। **5**और जल दसवें महीने तक घटता चला गया, और दसवें महीने के पहले दिन पर्वतों की चोटियां दिखाई देने लगीं।

6तब ऐसा हुआ कि चालीस दिन के पश्चात नूह ने अपने बनाए हुए जहाज़ की खिड़की खोली, **7**और उसने एक कौवा उड़ा दिया। और जब तक पृथ्वी पर से जल सूख न गया, तब तक वह इधर-उधर उड़ता फिरा। **8**फिर उसने अपने पास से एक कबूतरी को उड़ा दिया कि देखे कि जल भूमि पर से घट गया कि नहीं। **9**पर उस कबूतरी को अपने पैर रखने के लिए कोई आधार न मिला, इसलिए वह जहाज़ पर उसके पास लौट आई, क्योंकि समस्त पृथ्वी पर जल ही जल था। तब उसने हाथ बढ़ाकर उसे ले लिया और अपने पास जहाज़ में रख लिया। **10**तब सात दिन और ठहरकर उसने उस कबूतरी को फिर जहाज़ से उड़ाया। **11**वह कबूतरी संध्या समय उसके पास लौट आई; और देखो, उसकी चोंच में जैतून की नई पत्ती थी। इस से नूह को मालूम हो गया कि जल भूमि पर से घट गया है। **12**तब सात दिन और ठहरकर उसने उस कबूतरी को फिर उड़ाया, पर वह उसके पास फिर न लौटी। **13**और ऐसा हुआ कि छ: सौ एक वर्ष के पहले महीने के पहले दिन, पृथ्वी पर से जल सूख गया। तब नूह ने जहाज़ की छत खोलकर बाहर दृष्टि की, और देखो, भूमि की सतह सूख गई थी। **14**और दूसरे महीने के सत्ताईसवें दिन तक पृथ्वी सूख चुकी थी। **15**तब परमेश्वर ने नूह से यह कहा: **16** "तू जहाज़ में से बाहर निकल आ, अर्थात [i]तू, और तेरे साथ तेरी पत्नी, तेरे पुत्र और तेरी बहुएं भी। **17**अपने साथ प्रत्येक शरीर धारी प्राणी को, अर्थात अपने साथ के समस्त पशुओं, पक्षियों और पृथ्वी पर रेंगने वाले जंतुओं को बाहर निकाल ले आ, कि पृथ्वी पर अत्यधिक फैलें, [j]फूलें-फलें और पृथ्वी पर बढ़ जाएं।" **18**तब नूह अपने पुत्रों, अपनी पत्नी, और बहुओं सहित बाहर निकल आया। **19**और सब जंगली पशु, सब रेंगने वाले जन्तु, तथा पक्षी, और पृथ्वी पर चलने-फिरने वाले सब जीव-जन्तु अपनी-अपनी जाति के अनुसार जहाज़ में से निकल आए।

धन्यवाद का बलिदान

20तब नूह ने यहोवा के लिए एक वेदी बनाई और प्रत्येक शुद्ध पशु और प्रत्येक शुद्ध पक्षी की जाति में से लेकर वेदी पर होमबलियां चढ़ाईं। **21**और यहोवा ने [k]सुखदायक सुगन्ध पाकर अपने मन में कहा, "मैं फिर कभी मनुष्य के कारण पृथ्वी को [l]शाप न दूंगा,[1] यद्यपि बचपन से [m]मनुष्य के मन में जो कुछ उत्पन्न होता है वह बुरा ही होता है। जैसा मैंने

[1]या *पृथ्वी का तिरस्कार न करूँगा*

8:1 परमेश्वर ने नूह की . . . सुधि ली। यह जल-प्रलय के वृतान्त में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ को अंकित करता है। जब बाइबल कहती है कि परमेश्वर किसी व्यक्ति या किसी के साथ अपनी वाचा की "सुधि" लेता है, तब संकेत यह होता है कि वह उस व्यक्ति के कल्याण के लिये कुछ करने वाला है (तुल. 9:15; 19:29; 30:22; निर्ग. 2:24; 32:13; भज. 25:6-7; 74:2)। पृथ्वी पर समस्त जीवित प्राणी नष्ट हो चुके हैं और अब परमेश्वर सब कुछ नया करने वाला है, जो उसे प्रतिध्वनित करता जो उसने उत्पत्ति 1 में किया। **परमेश्वर ने पृथ्वी पर हवा चलाई।** हवा के लिए इब्रानी में *रूआख* शब्द है जिसका अनुवाद कभी-कभी "आत्मा" भी किया जाता है (उदा. 1:2; 6:3)। हालाँकि, यहाँ वचन का जो सन्दर्भ है वह सामान्य तौर पर पाठकों को इस योग्य बनाता है कि वे *रूआख* अर्थात "हवा" और *रूआख* अर्थात "आत्मा", के बीच के अन्तर को समझें, फिर भी यह वचन जानबूझकर 1:2 को प्रतिध्वनित करता है।

8:2-4 वचन 2 में परमेश्वर उस प्रक्रिया को फिर से पीछे की ओर ले आता है जो उसने 7:11 में आरम्भ की थी। **एक सौ पचास दिनों** के अन्तराल में जल-स्तर बढ़ा और घटा (7:17-24 पर टिप्पणी देखें)। **अरारात पर्वत** आधुनिक तुर्की की एक पर्वत शृंखला को दर्शाता है जिसमें अरारात पर्वत (आधुनिक तुर्की) सबसे अधिक ऊँचा है। इस वचन में स्पष्ट तौर पर नहीं बताया गया है कि नूह का जहाज़ किस पर्वत पर जा टिका।

8:5-14 जल घटने की धीमी और क्रमिक प्रक्रिया, जिसके पश्चात **पृथ्वी सूख चुकी थी** (व. 14) नूह द्वारा एक **कौवा** उड़ा देने (व. 7) और तब बाद में एक **कबूतरी** को उड़ा देने (व. 8-12) के विषय में विस्तृत वर्णन से दिया गया है। जैसा कि अध्याय 1 में है, जल में से सूखी भूमि दिखाई दी।

8:15-17 परमेश्वर द्वारा नूह को दिए निर्देश अध्याय 1 का स्मरण दिलाते हैं, विशेषकर नूह और उसके परिवार के लिये कहा गया यह कथन कि वे **फूले-फलें, और पृथ्वी पर बढ़ जाएँ** (1:28 देखें)।

8:18-19 परमेश्वर की आज्ञा का पालन करते हुए नूह अपने परिवार और सब जीवित प्राणियों को लेकर जहाज़ से बाहर निकलता है।

8:20-22 जहाज़ से बाहर निकलकर नूह का प्रथम कार्य जो दर्ज है वह यह है कि उसने **यहोवा के लिये एक वेदी बनाई** (व. 20)। उस पर उसने सम्पूर्ण होमबलि चढ़ाई जिसमें उसने कुछ शुद्ध पशुओं और पक्षियों की बलि चढ़ाई। हालाँकि यह कार्य निस्सन्देह परमेश्वर के छुटकारे के प्रति कृतज्ञता की अभिव्यक्ति है, फिर भी यह पापों के लिए प्रायश्चित्त का कार्य भी है। यह **होमबलियाँ** चढ़ाने का एक सामान्य पहलू है (लैव्य. 1:3-17, विशेषकर व. 4 देखें), और **सुखदायक सुगन्ध** का उल्लेख इस विचार का समर्थन करता है (उत्प. 8:21; लैव्य. 1:9, 13, 17)। इब्रानी में "सुखदायक" के लिये *निखोआख़* शब्द आया है जिसमें विश्राम और शान्ति का विचार निहित है। इसका सम्बन्ध "नूह" (इब्रा. *नोआख*) नाम से है और यहाँ इसका उपयोग सम्भवत: उत्पत्ति 5:29 में लेमेक के कथन का पाठकों को स्मरण कराने के लिए किया गया है। इसमें "शान्त करने" का संज्ञान भी है। होमबलि मनुष्य के पाप के प्रति परमेश्वर के कोप को शान्त करती है, इसलिए यद्यपि जल-प्रलय के कारण मनुष्य का स्वभाव बदला नहीं था, तौभी परमेश्वर का रवैया अवश्य बदल गया था। गौर करें कि 8:21 (**बचपन से मनुष्य के मन में जो कुछ उत्पन्न होता है वह बुरा**

प्रत्येक प्राणी को अब नष्ट किया है, [n]वैसा फिर कभी न करूंगा। **22** [o]जब तक पृथ्वी बनी रहेगी, तब तक: बोनी और
कटनी, सर्दी और गर्मी, ग्रीष्म और शरद, [p]दिन और रात, समाप्त न होंगे।"

नूह के साथ वाचा

9 परमेश्वर ने नूह और उसके पुत्रों को आशीष दी और उनसे कहा, [q]"फूलो-फलो और बढ़ो और पृथ्वी में भर जाओ।
2 [r]तुम्हारा डर और आतंक पृथ्वी के प्रत्येक पशु, आकाश के प्रत्येक पक्षी, भूमि पर रेंगने वाले प्रत्येक जन्तु, और
समुद्र की मछलियों पर होगा: ये सब तुम्हारे हाथ में कर दिए गए हैं। **3** [s]हर चलता-फिरता जीवित प्राणी तुम्हारे भोजन
के लिए होगा; [t]जैसे कि मैंने तुम्हें हरा साग-पात दिया था वैसे ही अब सब कुछ तुम्हें देता हूं। **4**केवल तुम मांस को उसके
[u]प्राण सहित अर्थात लहू सहित न खाना। **5**और निश्चय ही मैं तुम्हारे प्राण का बदला लूंगा; मैं [v]प्रत्येक पशु से उसका
बदला लूंगा, तथा [w]प्रत्येक मनुष्य और उसके भाई-बन्धु से भी मनुष्य के प्राण का बदला लूंगा।

6 [x]जो कोई मनुष्य का लहू बहाएगा,
उसका लहू मनुष्य द्वारा ही बहाया जाएगा,
[y]क्योंकि मनुष्य को परमेश्वर ने अपने स्वरूप में बनाया है।

7और तुम[1] फलदाई बनो और बढ़ो; पृथ्वी पर बहुतायत से सन्तान उत्पन्न करो और उसमें भर जाओ।"

8तब परमेश्वर ने नूह और उसके पुत्रों से कहा, **9** "देखो, [z]मैं स्वयं तुम से और तुम्हारे आने वाले वंश से अपनी वाचा
स्थापित करता हूं, **10**और प्रत्येक जीवित प्राणी से भी जो तेरे संग है, क्या पक्षी, क्या पालतू पशु, और तेरे साथ पृथ्वी
के प्रत्येक बनैले पशु, अर्थात उन सबसे जो जहाज़ से बाहर निकले हैं, यहां तक कि पृथ्वी के प्रत्येक पशु से भी। **11** [a]मैं
अपनी वाचा तुम्हारे साथ बांधता हूं, कि फिर कभी सब प्राणी जलप्रलय से नष्ट न होंगे और न कभी पृथ्वी को नष्ट करने

21 [n]अध्या. 9:11, 15; यशा. 54:9
22 [o]यिर्म. 5:24 [p]यिर्म. 33:20, 25

अध्याय 9
1 [q]अध्या. 1:22, 28; 8:17
2 [r][भज. 8:6-8; याकू. 3:7]
3 [s]व्यव.12:15; 1 तीमु.4:3, 4 [t]अध्या. 1:29
4 [u]लैव्य. 17:10, 11, 14; व्यव. 12:16, 23; 1 शमू.14:33; प्रेरि. 15:20, 29
5 [v]निर्ग. 21:28 [w]अध्या. 4:10, 11
6 [x]निर्ग. 21:12, 14; लैव्य. 24:17; गिन. 35:31, 33; [मत्ती. 26:52; प्रका. 13:10] [y]अध्या. 1:27; 5:1; याकू. 3:9
9 [z]अध्या. 6:18; 8:20-22
11 [a]यशा. 54:9, 10

[1]यहाँ पर *तुम* के लिए इब्रानी शब्द बहुवचन है

ही होता है) कितनी निकटता से 6:5 को प्रतिध्वनित करता है ("उसके मन का प्रत्येक विचार निरन्तर बुरा ही होता है")। पाप के प्रति मानव की प्रवृत्ति के बावजूद बलिदान चढ़ाने के द्वारा प्रायश्चित्त सम्भव है, जो मनुष्यों और परमेश्वर के बीच शान्तिमय सम्बन्ध को स्थापित करता है। **मैं फिर कभी . . . पृथ्वी को शाप न दूंगा** (8:21)। इब्रानी भाषा के पाठ में स्पष्ट बल इस बात पर है कि परमेश्वर फिर कभी जल-प्रलय नहीं भेजेगा; उसने 3:17 में दिए शाप को समाप्त नहीं किया है, जो अब भी क्रियाशील है ("शाप" के लिए आए शब्द भिन्न-भिन्न हैं; एच.एस.बी. के फुटनोट देखें)। बलिदान के प्रभाव के विषय में यह संक्षिप्त कथन बाइबल में उद्धार की योजना में बलिदान के महत्त्व को रेखांकित करता है।

9:1-4 जब कि यहाँ परमेश्वर का कथन 1:28-30 से निकट सादृश्य रखता है, फिर भी यहाँ दो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन बताये गए हैं। पहला, जीवित प्राणियों पर अधिकार करने के सकारात्मक निर्देश के स्थान पर नकारात्मक टिप्पणी है कि उनमें मनुष्यों का **डर** और **आतंक** रहेगा। दूसरा, पहले मनुष्य का खान-पान पेड़ पौधों से था, परन्तु अब मनुष्य को माँस खाने की अनुमति दे दी गयी थी। यद्यपि परमेश्वर भोजन के लिए पशुओं के प्राण लेने की अनुमति देता है, पशुओं का लहू फिर भी पवित्र बना रहता है और उसे खाया नहीं जाएगा, जो इस बात की स्वीकृति है कि समस्त जीवन परमेश्वर से है (लैव्य. 17:12-14 देखें)।

9:5-6 पशुओं का वध करने की अनुमति देने के बाद परमेश्वर मानव की हत्या के मसले पर बातचीत करता है। "सब प्राणियों" द्वारा हिंसा (व. 11), अर्थात मनुष्यों और पशुओं के द्वारा, परमेश्वर को जल-प्रलय भेजने के लिए विवश कर चुकी थी (6:11, 13)। यदि जल-प्रलय के बाद भी मनुष्य के स्वभाव में सुधार नहीं हुआ (6:5; 8:21) तब भविष्य में हिंसा कैसे रोकी जाएगी? यह कानूनी व्यवस्था इसका उत्तर है: **मैं प्रत्येक मनुष्य और उसके भाई-बन्धु से भी मनुष्य के प्राण का बदला लूंगा।** इसका अर्थ है कोई पशु या मनुष्य, जो मनुष्य का प्राण लेता है, उसे परमेश्वर के द्वारा उत्तरदायी ठहराया जाएगा, और मानव प्रतिनिधियों के द्वारा उसका बदला लेगा (उदा. निर्ग. 20:13; 21:28)। **जो कोई मनुष्य का लहू बहाएगा, उसका लहू मनुष्य द्वारा बहाया जाएगा।** यहाँ *टेलीओन* का सिद्धान्त, अर्थात प्राण के बदले प्राण, लागू होता है (निर्ग. 21:23 देखें)। यह सोचा-समझा प्रतिकार लेमेक के सतहत्तर गुना बदले से अधिक प्राथमिकता देने योग्य है (उत्प. 4:24)। मनुष्य के जीवन का इतना अधिक मूल्य आँका गया है कि उसे दण्ड के विधान (तंत्र) द्वारा सुरक्षा दी गई है, क्योंकि **मनुष्य को परमेश्वर ने अपने स्वरूप में बनाया है,** और इस कारण किसी अन्य व्यक्ति की हत्या करना उसकी हत्या करना है जो परमेश्वर के स्वरूप में है, और इस प्रकार निस्सन्देह स्वयं परमेश्वर पर आक्रमण है। बहुत से लोग इस कथन को नैतिक सिद्धान्त की स्थापना के रूप में मानते हैं जो हत्या के प्रकरणों में 'मृत्यु दण्ड' देने की अनुमति प्रदान करता है, इस विचार के साथ कि आरोपित व्यक्ति की उचित न्यायिक सुनवाई हुई है और उसका अपराध तर्कसंगत रूप में सन्देह से परे स्थापित हो चुका है (तुल. पुराने नियम के अनुसार दो या तीन गवाह, व्यव. 19:15, नए नियम में दोहराव, उदा., मत्ती 18:16; इब्रा. 10:28)। आगे इसमें यह भी आवश्यक है कि मृत्यु दण्ड का यह आदेश किसी निर्धारित मानवीय अधिकारी के न्यायिक क्षेत्र में क्रियान्वित किया जाए (व्यव. 19:15-21; रोमि. 13:1-5)। आधुनिक जटिल नागरिक समाज में (प्राचीन ग्रामीण समाज की तुलना में) तर्कसंगत रूप में बिना किसी सन्देह किसी का अपराध प्रमाणित करने और न्याय सुनिश्चित करने में आने वाली कठिनाई वर्तमान सन्दर्भ में इस सिद्धान्त पर अमल करने में बड़ी सावधानी और सजगता का महत्त्व रेखांकित करती है।

9:7 वचन 1 में प्रारम्भ हुई परमेश्वर की बातें समाप्त होती हैं जिनमें 8:17 में कही और 1:28 में प्रतिध्वनित बातों को दोहराया गया है। परमेश्वर चाहता है कि मनुष्यजाति फूले-फले और हिंसा या एक और जल-प्रलय के द्वारा नष्ट न की जाए। जनसंख्या वृद्धि का यह सकारात्मक विचार (तुल. 1:28 पर टिप्पणी देखें) बेबीलोन की जल-प्रलय की कहानी के सर्वथा विपरीत है, जिसमें देवी-देवता ऐसे प्रयास करते हैं कि मनुष्यजाति पृथ्वी पर न बढ़े।

9:9-11 परमेश्वर उस **वाचा** की रूपरेखा बताता है जो वह अब सब जीवित प्राणियों के साथ स्थापित करने जा रहा है, जल-प्रलय से पूर्व 6:18 में इसका संक्षेप में वर्णन किया गया है। यह पहली वाचा है जिसे उत्पत्ति में स्पष्ट तौर पर वाचा कहा गया है (व. 2:17 पर टिप्पणी देखें); इसी प्रकार की वाचा बाद में अब्राहम और उसके वंशजों से अध्याय 17 में स्थापित की गई है। वाचा सामान्य तौर पर उभय पक्षों को एक सम्बन्ध में बांधती है, जिसका आधार परस्पर व्यक्तिगत प्रतिबद्धता है, जिसमें वाचा के पालन

के लिए जलप्रलय होगा।" 12और परमेश्वर ने कहा, "जो वाचा मैं अपने और तुम्हारे तथा सब जीवित प्राणियों के साथ
जो तुम्हारे संग हैं, सब आने वाली पीढ़ियों के लिए बांध रहा हूं, [b]उसका चिह्न यह होगा। 13मैं बादल में [c]अपना धनुष
रखता हूं, और यही पृथ्वी और मेरे मध्य वाचा का चिह्न होगा। 14और जब मैं पृथ्वी पर बादल लाऊंगा तब बादल में यह
धनुष दिखाई देगा, 15और [d]मैं अपनी वाचा को स्मरण करूंगा जो मेरे और तेरे और प्रत्येक जीवित शरीरधारी प्राणी के
साथ बंधी है; और सब प्राणियों को नष्ट करने के लिए फिर कभी ऐसा जलप्रलय न होगा। 16जब धनुष बादल में प्रकट
होगा तब मैं उस [e]चिरस्थायी वाचा को स्मरण करने के लिए उसे देखूंगा जो परमेश्वर और पृथ्वी के सब जीवित प्राणियों
के साथ बंधी है।" 17तब परमेश्वर ने नूह से कहा, "यह उस वाचा का चिह्न है जो मैंने अपने और पृथ्वी के सब प्राणियों
के मध्य बांधी है।"

नूह के वंशज

18नूह के पुत्र जो जहाज़ में से बाहर निकले, वे [f]शेम, हाम और येपेत थे। हाम कनान का पिता हुआ। 19नूह के ये तीन
पुत्र थे, और [g]इन्हीं से सारी पृथ्वी बस गई।

20तब नूह किसानी करने लगा और उसने दाख की एक बारी लगाई।[1] 21और वह उसकी मदिरा पीकर मतवाला
हुआ, और अपने तम्बू के अन्दर नंगा हो गया। 22तब कनान के पिता हाम ने अपने पिता का नंगापन देखा और बाहर
जाकर अपने दोनों भाइयों को बताया। 23पर शेम और येपेत ने वस्त्र लिया और दोनों ने उसे अपने कन्धों पर डालकर
उलटे पग चलते हुए अपने पिता के नंगेपन को ढांप दिया; और उनके चेहरे फिरे हुए थे इसलिए उन्होंने अपने पिता के
नंगेपन को नहीं देखा। 24जब नूह का नशा उतर गया तब उसने [h]जान लिया कि छोटे पुत्र ने मेरे साथ क्या किया है।

[1]या *नूह, जो किसान था, पहला व्यक्ति हुआ, जिसने दाख की बारी लगाई।*

12 [b]अध्या. 17:11
13 [c]यहे. 1:28; [प्रका. 4:3; 10:1]
15 [d]लैव्य. 26:42, 45;1 राजा.8:23; यहे. 16:60]
16 [e]अध्या. 17:7, 13, 19
18 [f]अध्या. 5:32; 10:1
19 [g]अध्या. 10:32
24 [h][हब. 2:15]

और उसे तोड़ने के परिणाम भी जुड़े हैं। परमेश्वर एक समूह के लोगों से वाचा स्थापित करते समय उनके प्रतिनिधि के साथ इस प्रकार की वाचा बाँधता है: शेष सभी लोग उस प्रतिनिधि के "साथ" जुड़े होने के कारण उस वाचा के लाभ प्राप्त करते हैं (12:3 पर टिप्पणी देखें); इस वाचा में नूह और उसके वंशज और उसके साथ सभी जीवित पशु भी वाचा में शामिल किए गए हैं जो दर्शाता है कि नूह एक प्रकार से एक नया आदम है। वाचा सभी प्राणियों के साथ है, इस बात पर ज़ोर देकर परमेश्वर कहता है कि **फिर कभी पृथ्वी को नाश करने के लिए जल-प्रलय न होगा** (9:11)।

9:12-17 विभिन्न वाचाओं के साथ समुचित चिह्न या प्रतीक जुड़े होते हैं। अब्राहम से जुड़ी वाचा का चिह्न ख़तना है (अध्या. 17) और सीनै पर्वत पर इस्राएल के साथ बांधी गयी वाचा के लिये परमेश्वर ने एक चिह्न सब्त ठहराया (निर्ग. 31:12-17)। इस अवसर पर परमेश्वर ने धनुष का **चिह्न** ठहराया (उत्प. 9:13)। वर्षा के बादलों के साथ आकाश में उसकी उपस्थिति परमेश्वर की **चिरस्थायी वाचा** के स्मरण का प्रत्यक्ष चिह्न होगा (व. 16)। यह सोचना आवश्यक नहीं है कि धनुष सबसे पहले इसी अवसर पर दिखाई देने लगा; चाहे जो हो, परमेश्वर कहता है कि अब वह इस वाचा के चिह्न के रूप में धनुष का उपयोग करेगा। इस चिह्न को इस प्रकार नहीं समझना चाहिए कि परमेश्वर ने अपनी शूरवीरता के प्रतीक **धनुष** को आकाश में लटका दिया है, क्योंकि इस वचन में ऐसा कोई संकेत नहीं दिया गया है।

9:18-19 ये वचन जो जल-प्रलय के वृतान्त का अन्त करते हैं, आगे दो वृतान्तों की प्रत्याशा करते हैं। हाम के पुत्र **कनान** का सन्दर्भ (व. 18) वचन 20-29 की घटनाओं के लिये पृष्ठभूमि तैयार करता है। वचन 19 में लोगों का **सारी पृथ्वी** पर **बस जाने** का उल्लेख (व. 19), आगे अध्याय 10 में विकसित किया गया है।

9:20-29 *कनान को शाप देना।* यह असामान्य घटना जल-प्रलय के वृतान्त का एक अनापेक्षित क्रम प्रस्तुत करती है। जल-प्रलय और "नयी सृष्टि" के पश्चात नूह के द्वारा पाप में गिर जाने पर पाप में एक और पतन की घटना होती है, जो एक प्रकार से दूसरा आदम था, क्योंकि वह (आदम के समान ही) समस्त मानवजाति का मूल पिता हुआ। यह घटना सदोम के सर्वनाश के बाद लूत की पुत्रियों द्वारा ऐसा ही कार्य करने का पूर्वानुमान देती है (19:30-38)। नूह के मतवालेपन और हाम के अभद्र व्यवहार का नतीजा शेम, येपेत और हाम के पुत्र कनान के सम्बन्ध में विरोधाभासी उद्घोषणाओं में प्रकट होता है।

9:20 नूह का **किसानी** करना और उसका दाख उत्पादन में सफल होने का यह उल्लेख जल-प्रलय के बाद एक नए आरम्भ का संकेत करता है (5:28-31 पर टिप्पणी देखें)।

9:21-23 मदिरा पीकर मतवाला हुआ। नूह के मतवालेपन का इतना छोटा वर्णन दर्शाता है कि इसे अमान्य किया गया। किन्तु हाम के कार्य गम्भीर आलोचना का पात्र बने क्योंकि उसने तंबू में अपने **पिता का नंगापन** निर्लज्ज होकर देखा और जाकर अपने भाइयों को भी बताया (व. 22)। किन्तु इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता कि उसने अपने पिता को मतवाला और नंगा देखने के अतिरिक्त कोई विकृत यौन व्यवहार किया था। यद्यपि इस वृतान्त में स्पष्ट नहीं बताया गया है कि क्या हुआ था, फिर भी इतना स्पष्ट है कि हाम ने अपने पिता को नीचा दिखाया और उसका अपमान किया, और वर्णन के अनुसार उसने अपने भाइयों को भी इस अनादर में शामिल करने का प्रयास किया। इसके विपरीत हाम के भाइयों ने हर सम्भव प्रयास किया कि वे नूह के नंगेपन को न देखें, क्योंकि पाठकों को दो बार बताया गया है कि वे **उलटे पग चलते हुए** अपने पिता के पास गए (व. 23)। शेम और येपेत की प्रतिक्रिया हाम के कार्य के ठीक विपरीत थी, क्योंकि दोनों भाइयों ने अपने पिता के मूर्खतापूर्ण आचरण के बावजूद उसकी गरिमा बनाए रखी (निर्ग. 20:12)।

9:24-27 हाम को सबसे **छोटे पुत्र** के रूप मे बताना (व. 24) कुछ असामान्य लगता है क्योंकि विवरणों में उसका नाम शेम के बाद और येपेत से पहले आता है। सम्भव है कि किसी ऐसे कारणवश जिसे समझाया नहीं जा सकता, परम्परागत नामों का क्रम लड़कों के जन्म के क्रम के अनुसार नहीं है। **कनान शापित हो।** हाम के कार्य की प्रतिक्रिया में नूह हाम के पुत्र कनान को शाप देता है। स्पष्ट रूप में यह परिणाम वृतान्त में पहले ही सम्भावित है क्योंकि दो बार पहले भी अनावश्यक रूप में बताया गया है कि हाम कनान का पिता था (व. 18, 22)। **वह दासों का दास होगा।** बीती शताब्दियों में इस वृतान्त के आधार पर अफ्रीकी लोगों को गुलाम बनाए जाने को सही ठहराने का ग़लत प्रयास किया गया, जिसके परिणामस्वरूप परमेश्वर के स्वरूप में सृजे गए लोगों को गम्भीर रूप में शोषण, अन्याय और अमानवीयता के दंश सहने पड़े। नूह का कनान को दिया गया शाप

25अतः उसने कहा,
[i]"कनान शापित हो;
वह अपने भाइयों के लिए [j]दासों का दास होगा।"
26उसने यह भी कहा,
"शेम का परमेश्वर यहोवा धन्य हो;
और कनान उसका दास हो।
27 परमेश्वर येपेत[1] को बढ़ाए,
वह शेम के तम्बुओं में वास करे;
और कनान उसका दास हो।"
28जलप्रलय के पश्चात नूह तीन सौ पचास वर्ष तक जीवित रहा। 29इस प्रकार नूह की कुल आयु नौ सौ पचास वर्ष
की हुई; तत्पश्चात उसकी मृत्यु हो गई।

25[i]व्यव. 27:16 [j]यहो. 9:23; न्यायि.1:28; 1 राजा. 9:20, 21
अध्याय 10
2[k]व. 1-5 के लिए, 1 इति. 1:5-7 देखें; यहे. 38:1-6
4[l]भज. 72:10; यहे. 38:13 [m]गिन. 24:24; यशा. 23:1, 12; दानि. 11:30
5[n]यशा. 11:11; यिर्म. 2:10; 25:22; यहे. 27:6; सप. 2:11
6[o]व.6-8 के लिए, 1 इति. 1:8-10 देखें.

विभिन्न जातियों का वर्णन

10 नूह के पुत्रों अर्थात शेम, हाम और येपेत की यह वंशावली है। जलप्रलय के पश्चात उनसे पुत्र उत्पन्न हुए।
2 [k]येपेत के पुत्र ये थे: गोमेर, मागोग, मादै, यावान, तूबल, मेशेक और तीरास। 3तथा गोमेर के पुत्र अश्कनज,
रीपत और तोगर्मा थे। 4यावान के पुत्र एलीशा, [l]तर्शीश, [m]कित्ती, तथा दोदानी थे। 5इन्हीं के द्वारा जाति जाति के
[n]तटवर्तीय प्रदेश अपनी अपनी भाषा, कुल और जाति के अनुसार अपने अपने देश में अलग हो गए।
6 [o]हाम के पुत्र तो ये थे: कूश, मिस्र, फूत, और कनान। 7कूश के पुत्र, सबा, हबीला, सबता, राअमाह और सब्तका

[1]*येपेत* शब्द *विस्तार* के लिए प्रयुक्त होने वाले इब्रानी शब्द जैसा सुनाई देता है

जिसमें उसे दास बनाने का विचार केन्द्रीय है, उस न्याय का संकेत देता है जो बाद में कनानियों पर आएगा (व्यव. 7:1-3 की तुलना उत्प. 10:15-19 से करें)। इसके साथ ही यह तथ्य कि शाप केवल कनान पर आया, हाम की अन्य सन्तानों पर नहीं (जो उत्तरी अफ्रीका में बस गए थे), दर्शाता है कि इसे अफ्रीकी लोगों को गुलाम बनाने के पक्ष में उपयोग करना कितना गैरकानूनी था (दास-प्रथा पर बाइबल के समस्त पक्ष को जानने के लिए 1 कुरि. 7:21; इफि. 6:5; कुलु. 3:22-25; 1 तीमु. 1:10 पर टिप्पणियाँ देखें)। किन्तु शेम को ऊँचा स्थान दिया गया है, जैसा कि नूह ने येपेत के विषय में कहा कि वह **शेम के तम्बुओं में वास करेगा** (उत्प. 9:27)।

9:28 नूह की मृत्यु का वृतान्त उत्पत्ति 5 में दिए गए तरीके या नमूने के अनुरूप है जिसमें आदम और उसके वंशजों की कुल आयु और मृत्यु बताई गई है।

10:1-11:9 *नूह के पुत्रों के वंशज।* उत्पत्ति का अगला प्रमुख भाग जल-प्रलय के बाद होने वाले विकासों की रूपरेखा प्रस्तुत करता है, जिसमें मुख्य बल इस बात पर है कि मानवजाति कैसे (जाति-जाति के अनुसार विभाजित होकर बस गई।

10:1-32 *कुल, भाषाएँ, देश-देश और जातियाँ।* यह समस्त वृतान्त व्यापक तौर पर सूचियों के प्रारूप में बंटा है कि कैसे नूह के तीन पुत्रों के वंशजों ने पृथ्वी के विभिन्न भागों में जाकर जनसंख्या वृद्धि की और वहाँ बस गए। कभी-कभी इसमें विशेष रुचि की जानकारियाँ जोड़ी गई हैं। यह वंशावलियों और भौगोलिक जानकारी से युक्त वृतान्त एक प्रक्रिया का वर्णन कर रहा है जिसमें बहुत लम्बा समय लगा जब पारिवारिक गोत्र एक विशेष परिक्षेत्र में देशांतर होकर बस गए (नीचे दिया मानचित्र देखें)। जिस पूर्वज के नाम पर कुल या गोत्र का नाम रखा गया है, सम्भव है कि वह उस क्षेत्र में रहा ही नहीं जो बाद में उसके नाम से जाना गया। इस भाग के प्रत्येक तीन प्रमुख भाग गोत्र, भाषाओं, और जातियों का सन्दर्भ लेकर समाप्त होते हैं (व. 5, 20, 31)।

10:1 यह वंशावली है। यह विशेष सूत्र उत्पत्ति में एक नये भाग के आरम्भ को चिह्नित करता है (2:4 पर टिप्पणी देखें)।

10:2-5 सबसे पहले येपेत के वंशजों की सूची दी गई है। **इन्हीं के द्वारा जाति जाति के तटवर्तीय प्रदेश . . . अलग हो गए** (व. 5)। उनके बारे में केवल यही एक अतिरिक्त कथन है; इसमें तटवर्तीय प्रदेशों और भूमध्य सागर के टापुओं से येपेत के वंशजों का सम्बन्ध बताया गया है।

10:6-20 हाम के वंशजों पर शेम और येपेत के वंशजों से अधिक बढ़कर ध्यान दिया गया है। उनमें जिनका उल्लेख है उनमें इस्राएल के बहुत से शत्रु हैं, जैसे कि मिस्री, बाबेल के लोग, पलिश्ती, और कनानियों के बहुत से समूह। हाम के निज पुत्र **कूश, मिस्र, फूत और कनान** थे (व. 6)। कूश और फूत, मिस्र के दक्षिण और पश्चिम के प्रदेश हैं। **कूश निम्रोद का पिता हुआ** (व. 8)। यह सम्बन्ध असामान्य लगता है क्योंकि भौगोलिक दृष्टि से कूश का अफ्रीका से और निम्रोद का मेसोपोटामिया से सम्बन्ध है। कुछ कारणों से निम्रोद विशेष रूप में दिलचस्प है। वह बेबीलोन के बड़े नगरों से (अर्थात बेबीलोन; 11:9 की टिप्पणी देखें) और अश्शूर में नीनवे से जुड़ा है, जिनके निवासी बाद के समय में इस्राएल और यहूदा के लिए विनाशकारी साबित हुए। अश्शूर और बेबीलोन की सैन्य शक्ति के सन्दर्भ में निम्रोद को एक **पराक्रमी वीर** (अर्थात शूरवीर योद्धा) और **पराक्रमी शिकारी** (10:8, 9) कहा गया है। ये वर्णन जिनमें से एक **यहोवा की दृष्टि में** (10:9), इस अभिव्यक्ति के साथ विडम्बना से जुड़ा है, सम्भवतः नकारात्मक समझे जाने चाहिएँ। निम्रोद की हिंसात्मक प्रवृत्ति परमेश्वर की उस इच्छा के विपरीत है जब सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर ने मनुष्यों को अपने स्थान में अधिकारी या प्रतिनिधि नियुक्त किया था। **शिनार देश में बाबेल** (व. 10)। ये विवरण निम्रोद को बाबेल की मीनार के घटनाक्रम से जोड़ते हैं (11:2, 9 देखें)। निम्रोद का राज्य परमेश्वर की अभिलाषा के प्रतिकूल था। **मुख्य नगर** (10:12) । यह सम्भवतः उस प्रदेश की ओर संकेत करता है जिसमें नीनवे और कालह शामिल थे (योना 3:3 देखें)। कनान के वंशजों की विस्तृत सूची में वे नगर शामिल हैं जो उत्पत्ति में बाद में आने वाले घटनाक्रमों में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ अदा करती हैं। **सदोम** और **अमोरा** का विशेष उल्लेख (उत्प. 10:19) 9:22 में हाम के कार्यो और 19:4-8 में सदोम के मनुष्यों के कार्यों के बीच एक सम्भावित कड़ी है। "कनानी" का अभिप्राय कभी-कभी 10:15-19 (उदा. 28:1) में वर्णित सभी जनसमूहों से है।

थे; तथा राअमाह के पुत्र शबा और ददान हुए। 8कूश से निम्रोद उत्पन्न हुआ; वह पृथ्वी पर एक पराक्रमी वीर बना।[1]
9वह यहोवा की दृष्टि में पराक्रमी शिकारी था; इसलिए यह कहावत चल पड़ी, "यहोवा की दृष्टि में निम्रोद के समान
पराक्रमी शिकारी।" 10उसके राज्य का प्रारम्भ [p]शिनार देश में [q]बाबेल, ऐरेख, अक्कद और कलने से हुआ। 11उस देश
से वह अश्शूर को चला गया, और नीनवे, रहोबोतीर तथा कालह को बसाया, 12फिर रेसेन को भी बसाया जो नीनवे और
कालह के बीच में है; यही मुख्य नगर है। 13 [r]मिस्र इन सबका पिता हुआ: लूदी, अनामी, लहाबी, नप्तूही, 14पत्रूसी,
कसलूही, जिस[2] से पलिश्ती जाति निकली, तथा [s]कप्तोरी।
15 [t]कनान से उसका ज्येष्ठ पुत्र सीदोन उत्पन्न हुआ। तब हित्त, 16यबूसी, एमोरी, गिर्गाशी, 17हिव्वी, अर्की, सीनी,

10 [p]अध्या. 11:2 [q]अध्या. 11:9
13 [r]व. 13-18 के लिए,1 इति.1:11-16 देखें.
14 [s]व्यव. 2:23; यिर्म. 47:4; आमो. 9:7
15 [t][अध्या. 15:18-21]

[1]या *वह पृथ्वी पर पहला पराक्रमी वीर हुआ* या *वह पृथ्वी पर पराक्रमी वीर होने लगा*

राष्ट्रों की सूची 2200 ई.पू.

उत्पत्ति 10 में वर्णित बहुत से जनसमूहों की निश्चयात्मक पहचान की जा सकती है। सामान्य रूप में, हाम के वंशज उत्तरी अफ्रीका और भूमध्य सागर के पूर्वी तट पर बस गए, शेम के वंशज मेसोपोटामिया और अरब में और येपेत के वंशज यूरोप और एशिया माइनर के अधिकांश भागों में बस गए।

हिन्दी अध्ययन बाइबल

H S B

हिन्दी
अध्ययन
बाइबल
HINDI STUDY BIBLE
HINDI
STUDY
BIBLE
ALETHIA
Publications